बाइबल पर आधारित निर्णय लेना

अध्याय तीन

निर्देशात्मक दृष्टिकोण: पवित्रशास्त्र की विशेषताएं

Manuscript

thirdmill
Biblical Education. For the World. For Free.

© थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ 2012 के द्वारा

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी भाग को प्रकाशक, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़, इनकोरपोरेशन, 316, लाइव ओक्स बुलेवार्ड, कैसलबरी, फ्लोरिडा 32707 की लिखित अनुमति के बिना समीक्षा, टिप्पणी, या अध्ययन के उद्देश्यों के लिए संक्षिप्त उद्धरणों के अतिरिक्त किसी भी रूप में या किसी भी तरह के लाभ के लिए पुनः प्रकशित नहीं किया जा सकता।

पवित्रशास्त्र के सभी उद्धरण बाइबल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया की हिन्दी की पवित्र बाइबल से लिए गए हैं। सर्वाधिकार © The Bible Society of India

थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ की सेवकाई के विषय में

1997 में स्थापित, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ एक लाभनिरपेक्ष सुसमाचारिक मसीही सेवकाई है जो पूरे संसार के लिए मुफ्त में बाइबल आधारित शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है।

संसार के लिए मुफ़्त में बाइबल आधारित शिक्षा।

हमारा लक्ष्य संसार भर के हज़ारों पासवानों और मसीही अगुवों को मुफ़्त में मसीही शिक्षा प्रदान करना है जिन्हें सेवकाई के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है। हम इस लक्ष्य को अंग्रेजी, अरबी, मनडारिन, रूसी, और स्पैनिश भाषाओं में अद्वितीय मल्टीमीडिया सेमिनारी पाठ्यक्रम की रचना करने और उन्हें विश्व भर में वितरित करने के द्वारा पूरा कर रहे हैं। हमारे पाठयक्रम का अनुवाद सहभागी सेवकाइयों के द्वारा दर्जन भर से अधिक अन्य भाषाओं में भी किया जा रहा है। पाठ्यक्रम में ग्राफिक वीडियोस, लिखित निर्देश, और इंटरनेट संसाधन पाए जाते हैं। इसकी रचना ऐसे की गई है कि इसका प्रयोग ऑनलाइन और सामुदायिक अध्ययन दोनों संदर्भों में स्कूलों, समूहों, और व्यक्तिगत रूपों में किया जा सकता है।

वर्षों के प्रयासों से हमने अच्छी विषय-वस्तु और गुणवत्ता से परिपूर्ण पुरस्कार-प्राप्त मल्टीमीडिया अध्ययनों की रचना करने की बहुत ही किफ़ायती विधि को विकसित किया है। हमारे लेखक और संपादक धर्मवैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षित शिक्षक हैं, हमारे अनुवादक धर्मवैज्ञानिक रूप से दक्ष हैं और लक्ष्य-भाषाओं के मातृभाषी हैं, और हमारे अध्यायों में संसार भर के सैकड़ों सम्मानित सेमिनारी प्रोफ़ेसरों और पासवानों के गहन विचार शामिल हैं। इसके अतिरिक्त हमारे ग्राफिक डिजाइनर, चित्रकार, और प्रोडयूसर्स अत्याधुनिक उपकरणों और तकनीकों का प्रयोग करने के द्वारा उत्पादन के उच्चतम स्तरों का पालन करते हैं।

अपने वितरण के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए थर्ड मिलेनियम ने कलीसियाओं, सेमिनारियों, बाइबल स्कूलों, मिशनरियों, मसीही प्रसारकों, सेटलाइट टेलीविजन प्रदाताओं, और अन्य संगठनों के साथ रणनीतिक सहभागिताएँ स्थापित की हैं। इन संबंधों के फलस्वरूप स्थानीय अगुवों, पासवानों, और सेमिनारी विद्यार्थियों तक अनेक विडिओ अध्ययनों को पहुँचाया जा चुका है। हमारी वेबसाइट भी वितरण के माध्यम के रूप में कार्य करती है और हमारे अध्यायों के अतिरिक्त सामग्रियों को भी प्रदान करती है, जिसमें ऐसे निर्देश भी शामिल हैं कि अपने शिक्षण समुदाय को कैसे आरंभ किया जाए।

थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज a 501(c)(3) कारपोरेशन के रूप में IRS के द्वारा मान्यता प्राप्त है। हम आर्थिक रूप से कलीसियाओं के टैक्स-डीडक्टीबल योगदानों, संस्थानों, व्यापारों और लोगों पर आधारित हैं। हमारी सेवकाई के बारे में अधिक जानकारी के लिए और यह जानने के लिए कि आप किस प्रकार इसमें सहभागी हो सकते हैं, कृपया हमारी वैबसाइट http://thirdmill.org को देखें।

विषय-वस्तु

परिचय 1
दैवीय लेखक 2
पवित्रशास्त्र की सामर्थ्य **2**
उदाहरण 2
आशय 4
पवित्रशास्त्र का अधिकार **5**
अधिकार का दावा 6
आशय 8
मानवीय श्रोता 10
पवित्रशास्त्र की स्पष्टता **10**
प्रकृति 11
आशय 12
पवित्रशास्त्र की आवश्यकता **13**
उद्धार 13
विश्वासयोग्य जीवन 14
आशय 14
पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता **15**
उद्देश्य 16
भ्रांतियां 18
चुप्पी 19
निष्कर्ष 21

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

बाइबल पर आधारित निर्णय लेना

अध्याय तीन

निर्देशात्मक दृष्टिकोण: पवित्रशास्त्र की विशेषताएं

परिचय

लगभग हर देश में न्यायालय के कार्यों में लिखित दस्तावेजों का इस्तेमाल किया जाता है। रसीदों, पत्रों, समझौतों, अंगीकारों और गवाहों के लिखित कथनों को प्रमाणों के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। परन्तु हरेक यह जानता है कि न्यायालयों में ऐसे दस्तावेजों का उपलब्ध होना ही पर्याप्त नहीं है। उनका प्रभावशाली रूप में इस्तेमाल करने के लिए वकीलों, न्यायियों, न्यायपीठों को उन दस्तावेजों के खास चरित्रों या विशेषताओं के बारे में जानकारी होना भी जरूरी है। इस बात को जानने और सीखने के लिए बहुत समय व्यतीत किया जाता है कि किसने उस दस्तावेज को लिखा, किसने प्राप्त किया, यह कब लिखा गया और यह क्या कहता है। इन दस्तावेजों को सही रूप से इस्तेमाल करने के लिए इन विशेषताओं के बारे में जानना बहुत महत्वपूर्ण है।

जब हम मसीही नैतिक शिक्षा के बारे में बात करते हैं तो हम इसी विषय के बारे में सोचते हैं। नैतिक प्रश्न चाहे जो भी क्यों न हो, हमारे पास सदैव कम से कम एक ऐसा दस्तावेज है जिससे परामर्श लेना हमारे लिए जरूरी है, वह है बाइबल। परन्तु बाइबल का हमारे निर्णयों पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह अलग-अलग व्यक्ति पर निर्भर करता है। कुछ मसीही नैतिक प्रश्नों के सिद्ध उत्तरों के त्रुटिरहित और आधिकारिक स्रोत के रूप में बाइबल पर पूरी तरह से निर्भर होते हैं। अन्य लोग इसकी सलाह को महत्व तो देते हैं परन्तु इसके शब्दों को नमक के दानों के साथ लेते हैं, वहीं कुछ और लोग इसे अप्रासंगिक और आधुनिक संसार से पिछड़ा हुआ मानते हैं। नैतिक शिक्षा में बाइबल की उपयोगिता की इन सभी भिन्न अवधारणाओं में एक बात साझी है: वे सब बाइबल की विशेषताओं के मूल्यांकन पर आधारित हैं।

यह अध्याय बाइबल पर आधारित निर्णय लेना की श्रृंखला का तीसरा अध्याय है। हमने इस अध्याय का नाम दिया है, “पवित्रशास्त्र की विशेषताएं।” जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा है, परमेश्वर का अपना चरित्र हमारा परम स्तर है, वहीं उसका वचन हमारा आधिकारिक प्रकट स्तर है क्योंकि त्रुटिरहित रूप में परमेश्वर के चरित्र के बारे में हमें सिखाता है। इस अध्याय में हम पवित्रशास्त्र की विशेषताओं पर ध्यान देंगे ताकि हम और अधिक स्पष्टता से देख सकें कि किस प्रकार बाइबल हमारे समक्ष परमेश्वर के चरित्र को प्रकट करती है। पिछले अध्याय में हमने कहा था कि नैतिक निर्णय लेने की क्रिया में सदैव एक व्यक्ति का परिस्थिति के ऊपर परमेश्वर के वचन को लागू करना शामिल होता है। और इस दृष्टिकोण ने यह देखने में हमारा मार्गदर्शन किया कि ऐसे तीन मूलभूत विचार हैं जिन्हें उस समय ध्यान में रखा जाना चाहिए जब हम नैतिक निर्णय लेते हैं: परमेश्वर के वचन का स्तर, एक परिस्थिति के विषय, और निर्णय लेने वाला व्यक्ति। हमने इन तीन बातों को नैतिक शिक्षा में निर्देशात्मक, परिस्थिति-संबंधी, और अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोणों के रूप में पहचाना है।

इस अध्याय में हम पुनः निर्देशात्मक दृष्टिकोण को संबोधित करेंगे, जिसके द्वारा हम नैतिक निर्णयों के उचित स्तरों की तलाश करेंगे। हम पवित्रशास्त्र की विशेषताओं पर हमारी चर्चा को दो भागों में बांटेंगे: पहला, हम उन विशेषताओं की जांच करेंगे जो पवित्रशास्त्र में मुख्य रूप से इसके दैवीय लेखक होने के कारण पाई जाती है, अर्थात् इसकी सामर्थ्य और अधिकार। दूसरा, हम उन विशेषताओं की जांच भी करेंगे जो पवित्रशास्त्र में इसलिए पाई जाती हैं कि यह मानवीय श्रोताओं के लिए लिखा गया था, अर्थात्, इसकी स्पष्टता, आवश्यकता, और पर्याप्तता। आइए पहले पवित्रशास्त्र के दैवीय लेखक होने पर ध्यान देने के द्वारा आरंभ करें।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

दैवीय लेखक

जब हम पवित्रशास्त्र के दैवीय लेखक होने के बारे में बात करते हैं, तो हम उसके लोगों के प्रति परमेश्वर के वचन को देखते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि यह "परमेश्वर का वचन" है। जब हम पवित्रशास्त्र की विशेषताओं की खोज करते हैं जो मुख्य रूप से इसकी दैवीय प्रेरणा से निकलते हैं, तो हम दो विषयों को देखेंगे: पवित्रशास्त्र की सामर्थ्य, और पवित्रशास्त्र का अधिकार। निसंदेह, अधिकांश सुसमाचारिक मसीही स्वतः इस बात को पहचानते हैं कि बाइबल हर पीढ़ी के लिए सामर्थ्यशाली, आधिकारिक वचन है। फिर भी, हम में से अधिकांश लोगों ने पवित्रशास्त्र की इन विशेषताओं से संबंधित अनेक विषयों के बारे में कभी नहीं सोचा। परन्तु हम बाइबल को नैतिक शिक्षा में और अधिक प्रभावशाली रूप में प्रयोग कर सकते हैं यदि हम और अधिक विवरणों के साथ इन विशेषताओं को समझें। इसलिए, आइए पहले हम पवित्रशास्त्र की सामर्थ्य की ओर अपना ध्यान लगाएं।

पवित्रशास्त्र की सामर्थ्य

मसीही होने के नाते, जब हम नैतिक शिक्षा के विषय को देखते हैं, तो हमारी रूचि केवल यह देखने में नहीं है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। हमारी रूचि उस ज्ञान को नैतिक रूप में प्रशंसनीय कार्य करने, विचार करने और महसूस करने के द्वारा लागू करने में भी है। हम उस सामर्थ्य को कहां से प्राप्त कर सकते हैं कि हम वही कार्य करें जो सही और अच्छे हैं? इस कार्य में, हमें पवित्रशास्त्र से बहुत सामर्थ्य मिलती है। परमेश्वर के जीवित और सक्रिय वचन के रूप में, बाइबल हमें केवल यह नहीं बताती कि हमें क्या करना है; यह हमें ऐसे रूपों में इस बात पर विश्वास करने और जीने में सामर्थ्य देती है जो परमेश्वर को प्रसन्न करते हैं और उसकी आशीषों की ओर अगुवाई करते हैं। आइए हम इस भाव को देखें, पहले परमेश्वर के वचन के भिन्न रूपों में इसकी सामर्थ्य के उदाहरणों को देखने के द्वारा, और दूसरा, उन आशयों के देखने के द्वारा जो इस सामर्थ्य का नैतिक निर्णय पर होता है।

उदाहरण

जैसा कि हम हमारे पिछले अध्यायों में देख चुके हैं, परमेश्वर का वचन कई रूप ले सकता है। और बाइबल दर्शाती है कि परमेश्वर का वचन तब भी सामर्थी होता है जब यह पवित्रशास्त्र का रूप नहीं लेती। जब हम पवित्रशास्त्र की सामर्थ्य को दर्शाने का प्रयास करते हैं, तो हम पहले सृष्टि पर परमेश्वर के वचन की सामर्थ्य को देखने के द्वारा आरंभ करेंगे। दूसरा, हम उसके भविष्यवाणिय वचन की सामर्थ्य को देखेंगे, और फिर सुसमाचार के प्रचार की सामर्थ्य को देखेंगे। अंत में, हम परमेश्वर के लिखित वचन या पवित्रशास्त्र की सामर्थ्य को देखेंगे। आइए, पहले हम सृष्टि पर परमेश्वर के वचन की सामर्थ्य की जांच करने के द्वारा आरंभ करें।

जब हम परमेश्वर के वचन की सामर्थ्य पर ध्यान देते हैं, तो पहले यह सोचना सहायक होता है कि किस प्रकार उसका वचन सृष्टि के ऊपर सामर्थी है। शायद वह स्थान जहां इसे सबसे सरलता से देखा जाता है, वह है उत्पत्ति 1 का सृष्टि का वर्णन, जहां परमेश्वर के वचन से इस संसार की उत्पत्ति हुई थी। सारे अध्याय में, जो एकमात्र कार्य परमेश्वर करता है, वह है बोलना। और उसके बोले हुए वचन से वह रचना करता है, आज्ञा देता है, और सारे ब्रह्मांड को भर देता है। जैसे कि भजन 33:6 और 9 इस वर्णन के बारे में टिप्पणी करते हैं:

> **आकाशमण्डल यहोवा के वचन से, और उसके सारे गण उसके मुंह की श्वास से बने। जब उस ने कहा, तब हो गया; जब उस ने आज्ञा दी, तब वास्तव में वैसा ही हो गया। भजन 33:6, 9**

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

सृष्टि के दिनों में परमेश्वर के बोलने में बहुत सामर्थ्य थी, इतनी सामर्थ्य कि उसके वचन से सृष्टि उत्पन्न हो गई। इसका अर्थ यह नहीं है कि शब्दों में अपनी सामर्थ्य होती है जिसका परमेश्वर इस्तेमाल करता है। बल्कि, परमेश्वर अपनी घोषणाओं को ऐसे पात्रों के रूप में इस्तेमाल करता है जो उसकी ही सामर्थ्य को दर्शाते हैं। परमेश्वर का वचन वह माध्यम है जिसका इस्तेमाल परमेश्वर अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक व्यक्ति कील को ठोकने के लिए हथोड़े का प्रयोग करता है।

दूसरा, पवित्रशास्त्र इस बात को भी स्पष्ट करता है कि परमेश्वर के वचन में बहुत सामर्थ्य होती है जब यह प्रेरणा-प्राप्त भविष्यवक्ताओं के मुख से आते हैं। यशायाह 55:10-11 इस विचार की पुष्टि करते हैं। वहां भविष्यवक्ता ने लिखा:

> **जिस प्रकार से वर्षा और हिम आकाश से गिरते हैं और वहां यों ही लौट नहीं जाते, वरन भूमि पर पड़कर उपज उपजाते हैं... उसी प्रकार से मेरा वचन भी होगा जो मेरे मुख से निकलता है; वह व्यर्थ ठहरकर मेरे पास न लौटेगा, परन्तु, जो मेरी इच्छा है उसे वह पूरा करेगा, और जिस काम के लिये मैं ने उसको भेजा है उसे वह सफल करेगा। (यशायाह 55:10-11)**

यद्यपि यह अनुच्छेद परमेश्वर के वचन को उसके मुख से निकलने के बारे में कहता है, संदर्भ में यह स्पष्ट है कि परमेश्वर भविष्यवक्ता यशायाह के प्रचार के बारे में बात कर रहा था। यहूदा के लोगों ने इस प्रभु के वचन को सुना, सीधे परमेश्वर के मुख से नहीं परन्तु यशायाह से। यद्यपि संदेश तब भी सामर्थी था जब यशायाह ने बोला और कहा था; परन्तु उसके उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इसमें परमेश्वर की सामर्थ्य थी।

एक तीसरा तरीका जिसमें हम परमेश्वर के वचन की सामर्थ्य को देख सकते हैं, वह है उसके वचन या सुसमाचार के प्रचार के द्वारा। नया नियम प्रायः इस विचार की पुष्टि करता है जब यह कहता है कि परमेश्वर सुसमाचार के प्रचार के द्वारा कार्य करता है चाहे प्रचारक त्रुटिरहित रूप में प्रेरणा-प्राप्त नहीं होते। उदाहरण के तौर पर, रोमियों 1:15-16 में पौलुस ने प्रत्यक्ष रूप से कहा कि सुसमाचार के प्रचार में परमेश्वर की सामर्थ्य होती है:

> **मैं... सुसमाचार सुनाने को भरसक तैयार हूँ। इसलिये कि वह हर एक विश्वास करनेवाले के लिये... उद्धार के निमित्त परमेश्वर की सामर्थ्य है। (रोमियों 1:15-16)**

जो सुसमाचार यहां पौलुस के मन में था वह उन सत्यों का एक दस्ता नहीं है कि परमेश्वर ने क्या किया है, और न ही सुसमाचार के कथनों द्वारा प्रस्तुत परमेश्वर की सामर्थ्य थी। उसका अर्थ यह नहीं था कि सुसमाचार उस परमेश्वर के बारे में है जिसके पास सामर्थ्य है, या फिर उन बातों के विषय में कि परमेश्वर ने अपनी सामर्थ्य से क्या किया है। बल्कि, पौलुस का अर्थ था कि सुसमाचार प्रचार करने का कार्य शक्तिशाली है, क्योंकि परमेश्वर लोगों को विश्वास में लाने के लिए प्रचार का इस्तेमाल करता है।

पौलुस ने 1 कुरिन्थियों 1:18 में ऐसा ही कथन कहा, जहां उसने लिखा:

> **क्योंकि क्रूस की कथा नाश होनेवालों के निकट मूर्खता है, परन्तु हम उद्धार पानेवालों के निकट परमेश्वर की सामर्थ्य है। (1 कुरिन्थियों 1:18)**

फिर से ध्यान दीजिए, पौलुस संदेश के बारे में बात कर रहा था, न केवल संदेश से संबंधित ऐतिहासिक तथ्यों के बारे में। व्यावहारिक रूप में लोग सुसमाचार के दावों के सत्य को स्वीकार नहीं करते, और उसके साथ-साथ मनुष्यजाति को बचाने के लिए परमेश्वर को मूर्ख समझते हैं। वहीं, लोग सुसमाचार के संदेश को मूर्ख समझते हैं क्योंकि वे इस बात पर विश्वास नहीं करते कि इसके कथन सत्य हैं। उनके लिए यह एक काल्पनिक कहानी या झूठ है, और वे सोचते हैं कि सही सोच वाला कोई व्यक्ति इस पर विश्वास नहीं करेगा। इसी कारण से सुसमाचार अविश्वासियों के लिए

मूर्खता है। परन्तु संदेश पर विश्वास करने वालों के लिए सुसमाचार परमेश्वर की सामर्थ्य है क्योंकि यह वह माध्यम है जिसके द्वारा परमेश्वर उन्हें सत्य के उद्धाररूपी ज्ञान की ओर लेकर आता है।

यह अनुभव करने के बाद कि परमेश्वर का वचन भविष्यवाणिय वचन और सुसमाचार के त्रुटिअधीन प्रचार में भी सृष्टि के ऊपर सामर्थी है, हम परमेश्वर के लिखित वचन, अर्थात् बाइबल की सामर्थ्य को समझने की दशा में हैं।

स्वयं यीशु ने लिखित वचन की सामर्थ्य की ओर इशारा किया जब उसने लूका 16 में लाजर और धनी व्यक्ति की चिरपरिचित कहानी सुनाई। आपको याद होगा कि जब धनी व्यक्ति की मृत्यु हुई, तो उसने नरक से ऊपर देखा कि किस प्रकार लाजर को अब्राहम से राहत मिली। धनी व्यक्ति ने, इस बात की चिन्ता में कि उसका परिवार भी नरक में सड़ेगा, अब्राहम से कहा कि वह लाजर को मृतकों में से जीवित करे और उसे धनी व्यक्ति के परिवार में पश्चाताप का संदेश देने के लिए भेज दे। लूका 16:29-31 में हम अब्राहम के उत्तर को पाते हैं:

> **उन के पास तो मूसा और भविष्यद्वक्ताओं की पुस्तकें हैं, वे उन की सुनें... जब वे मूसा और भविष्यद्वक्ताओं की नहीं सुनते, तो यदि मरे हुओं में से कोई भी जी उठे तौभी उस की नहीं मानेंगे। (लूका 16:29-31)**

इस अनुच्छेद के कम से कम दो तत्व हमारी चर्चा के लिए महत्वपूर्ण हैं। पहला, अब्राहम पवित्रशास्त्र के बारे में बात कर रहा था। उसने मूसा और भविष्यवक्ताओं का उल्लेख किया, परन्तु ऐसे लोगों के रूप में नहीं जो एक व्यक्ति के रूप में निरन्तर बात करते रहे, परन्तु उन लेखकों के रूप में जो बाइबल, अर्थात् परमेश्वर के लिखित वचन के माध्यम से बात करते रहे। और जिस प्रकार मूसा और भविष्यवक्ताओं के वचन तब शक्तिशाली थे जब परमेश्वर ने उन्हें उनके पृथ्वी पर के जीवनों के दौरान बात करने के लिए प्रेरणा दी थी, वैसे ही वे लिखित रूप में भी निरन्तर शक्तिशाली हैं।

दूसरा, अब्राहम ने कहा कि परमेश्वर से प्रेरणा-प्राप्त भविष्यवक्ताओं द्वारा लिखित पवित्रशास्त्र के वचनों में जिस प्रकार मृतकों में से किसी को जीवित करने की अद्‌भुत चमत्कारिक सामर्थ्य है वैसे ही इसमें लोगों को पश्चताप में लाने की अद्‌भुत सामर्थ्य है। कई रूपों में इस अनुच्छेद में हम बाइबल में पाए जाने वाले वचन की सामर्थ्य के विषय में सबसे अधिक चैंका देने वाले कथन पाए जाते हैं। हम सब महसूस करते हैं कि मृतकों में किसी को जीवित होते हुए देखना एक बहुत ही प्रभावशाली अनुभव होगा। इसमें जीवन को बदल देने के सामर्थ्य होगी। परन्तु यहां पर यीशु ने वास्तव में यह दर्शाया कि बाइबल को पढ़ने में किसी मृतक को जीवित होते हुए देखने से भी अधिक सामर्थ्य होती है। प्रेरित पौलुस ने 2 तीमुथियुस 3:15 में इस विचार की पुष्टि की जब उसने लिखा:

> **पवित्रशास्त्र... तुझे मसीह पर विश्वास करने से उद्धार प्राप्त करने के लिये बुद्धिमान बना सकता है। (2 तीमुथियुस 3:15)**

पवित्रशास्त्र का अध्ययन करना प्रचार करने जैसा है क्योंकि यह वह माध्यम है जिसके द्वारा परमेश्वर लोगों को उद्धार के लिए आवश्यक समझ और विश्वास देता है। जिस प्रकार प्रचारित वचन में परमेश्वर की निश्चित सामर्थ्य होती है, वैसे ही बाइबल में भी होती है।

आशय

सृष्टि में परमेश्वर के वचन की सामर्थ्य, प्रेरणा-प्राप्त भविष्यवाणिय कथन, त्रुटिअधीन प्रचार और बाइबल के ऐसे ज्ञान के साथ, हम नैतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया के लिए इन विषयों के आशय पर संक्षिप्त रूप से बात करने की स्थिति में हैं।

एक अनुच्छेद जो परमेश्वर के वचन की सामर्थ्य के व्यावहारिक आशयों को स्पर्श करता है, वह है इब्रानियों 4:12-13:

> परमेश्वर का वचन जीवित, और प्रबल है... और मन की भावनाओं और विचारों को जांचता है। और सृष्टि की कोई वस्तु उस से छिपी नहीं है। (इब्रानियों 4:12-13)

ध्यान दें कि यहां पर इब्रानियों का लेखक परमेश्वर के वचन को जीवित और सक्रिय बताता है। यह शिथिल सूचनाओं का सामर्थ्यहीन संकलन नहीं है। इसके विपरीत, जब हम परमेश्वर के वचन को देखते हैं तो हमें उसे उस बात को पूरा करने वाली सामर्थी सक्रिय जीवित वस्तु के रूप में देखना चाहिए जिसकी परमेश्वर अभिलाषा करता है। और परमेश्वर का वचन नैतिक शिक्षा के क्षेत्र में क्या करता है? जैसा कि यह अनुच्छेद कहता है, परमेश्वर का वचन हमारे हृदयों को जांचता है। यह हमारे आंतरिक विचारों और लक्ष्यों को भेदने और परखने के योग्य है। और इसमें हमें दण्ड से बचाने और पवित्र एवं नैतिक जीवन जीने के योग्य बनाने की शक्ति है। सुनिए किस प्रकार पौलुस ने 2 तीमुथियुस में उस अनुच्छेद को जारी रखा जिसे हमने अभी पढ़ा था। 2 तीमुथियुस 3:15-17 में उसने लिखा:

> पवित्रशास्त्र... तुझे मसीह पर विश्वास करने से उद्धार प्राप्त करने के लिये बुद्धिमान बना सकता है। हर एक पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है और उपदेश, और समझाने, और सुधारने, और धर्म की शिक्षा के लिये लाभदायक है। ताकि परमेश्वर का जन सिद्ध बने, और हर एक भले काम के लिये तत्पर हो जाए। (2 तीमुथियुस 3:15-17)

बाइबल की सामर्थ्य मसीह में हमारे आरंभिक विश्वास की अगुवाई में ही नहीं है। परमेश्वर की वाणी के रूप में, पवित्रशास्त्र में हमें "हर भले कार्य" में निपूण करने की सामर्थ्य भी है। पवित्र आत्मा पवित्रशास्त्र को हमें विश्वास और बुद्धि देने, एवं हमारे चरित्रों को ऐसे मोड़ने में प्रयोग करता है कि जब नैतिक विकल्पों का सामना करते हैं तो हम अच्छे को चुनने और बुरे को त्यागने के योग्य हो जाते हैं।

बहुत बार मसीही स्वयं को नैतिक जीवन जीने के अपने प्रयासों के द्वारा हतोत्साहित पाते हैं। वे सही और अच्छे कार्य करने में असहाय और निर्बल महसूस करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में इस बात को जानना उत्साहयोग्य है कि पवित्रशास्त्र को सीखना, उनको याद रखना, और पवित्रशास्त्र पर मनन करना व्यर्थ का कार्य नहीं है। यह किसी नैतिक पुस्तक को पढ़ने से कहीं अधिक अच्छा है। इसकी अपेक्षा, पवित्रशास्त्र में परमेश्वर का वचन हमें परमेश्वर के लिए जीने के योग्य बनाता है। परमेश्वर के वचन को निरंतर सीखना और उस पर मनन करना हमें परमेश्वर की उस सामर्थ्य के संपर्क में लाता है जो सदैव उसके उद्देश्यों को पूरा करेगी। इस प्रकार से, पवित्रशास्त्र की सामर्थ्य मसीही नैतिक शिक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

पवित्रशास्त्र का अधिकार

दैवीय प्रेरणा से निकलने वाली बाइबल की दूसरी विशेषता है, पवित्रशास्त्र का अधिकार। क्योंकि बाइबल परमेश्वर से प्रेरणा-प्राप्त है, इसलिए इसमें परमेश्वर का अधिकार पाया जाता है। एक भाव में, हमने यह दर्शाने के द्वारा इस अधिकार को प्रमाणित कर दिया है कि पवित्रशास्त्र हर पीढ़ी के लिए परमेश्वर की वाणी, और उसका जीवित और सक्रिय वचन है। परमेश्वर के पास सारा अधिकार है; इसलिए जब कभी भी और जैसे भी वह बोलता है, तो उसके सारे सुनने वालों पर उसकी आज्ञा मानने की जिम्मेदारी होती है। यह वही विचार है जो हमने हमारे पहले अध्याय में रखा था जब हमने कहा था कि सारा प्रकाशन निर्देशात्मक होता है क्योंकि यह हमें उस परमेश्वर के बारे में सिखाता है जो नैतिकता का परम स्तर है।

फिर भी, यह देखना बहुमूल्य है कि किस प्रकार बाइबल अपने अधिकार के बारे में बात करती है, और इसके साथ इस अधिकार के कुछ नैतिक आशयों को देखना भी। सबसे पहले हम अधिकार के विषय में बाइबल के दावे की ओर मुड़ेंगे और फिर हमारे जीवनों के लिए इस दावे के आशयों की ओर।

अधिकार का दावा

बाइबल कम से कम दो रूपों में दैवीय अधिकार का दावा करती है। पहला, यह अपने अधिकार के लिए ऐतिहासिक उदाहरणों को प्रदान करती है। और दूसरा, यह स्पष्ट रूप से अधिकार का दावा करती है। हम पहले बाइबल के अधिकार के ऐतिहासिक उदाहरणों को संबोधित करेंगे।

जब हम परमेश्वर के मौखिक वचन और परमेश्वर के लिखित वचन, जिसे हम इस अध्याय में देख चुके हैं, के बीच गहरे संबंध को देखते हैं तो हम उन कई रूपों को देख सकते हैं जिसमें बाइबल हमें परमेश्वर के वचन के अधिकार के उदाहरणों को प्रदान करती है जो बाइबल पर भी लागू होते हैं। बाइबल में निहित आरंभिक इतिहास में परमेश्वर ने मानवजाति से प्रत्यक्ष रूप में बात की, और उसकी वाणी में अधिकार था। उदाहरण के तौर पर, उत्पत्ति 2-3 में सृष्टि और पतन के वर्णन में परमेश्वर ने अदन की वाटिका को जोतने और निषिद्ध फल को न खाने की आज्ञा दी। परन्तु हव्वा ने परमेश्वर के कहे हुए वचन को सुनने की अपेक्षा सांप के कहे हुए वचन को सुनने का चुनाव किया, और इसलिए परमेश्वर के वचन के अधिकार को ठुकरा दिया। और फिर आदम ने परमेश्वर के वचन को सुनने की अपेक्षा हव्वा के कहे हुए वचन को सुना और परमेश्वर के अधिकार को ठुकरा दिया। परन्तु परमेश्वर के वचन का अधिकार नष्ट नहीं हुआ। बल्कि, परमेश्वर ने आदम और हव्वा, और उनके साथ सारी सृष्टि को दण्ड देने के द्वारा अपने कहे हुए वचन के अधिकार को लागू किया।

बाद में मूसा के दिनों में परमेश्वर ने अपने मौखिक वचन को लिखित में दिया। मूसा को दस आज्ञाएं बताने की अपेक्षा, उसने इन नियमों को पत्थर की पट्टियों पर लिखा। उसने मूसा को कई अन्य नियम और आज्ञाएं भी दीं कि वह उन वचनों को लिख ले। इन सब बातों ने वाचा की पुस्तक की रचना की जिसे हम निर्गमन अध्याय 24 में पढ़ते हैं। वे अपने लोगों के साथ परमेश्वर की वाचा की प्रतिज्ञाएं थीं, और उनमें केवल परमेश्वर का अधिकार ही नहीं था बल्कि आज्ञा मानने वालों के लिए आशीष और आज्ञा न मानने वालों के लिए श्राप देने के द्वारा सामर्थ्य के साथ इन नियमों को लागू करने की प्रतिज्ञा भी थी। निर्गमन 24:4-8 में इस वर्णन को सुने:

> तब मूसा ने यहोवा के सब वचन लिख दिए... तब वाचा की पुस्तक को लेकर लोगों को पढ़ कर सुनाया; उसे सुनकर उन्होंने कहा, जो कुछ यहोवा ने कहा है उस सब को हम करेंगे, और उसकी आज्ञा मानेंगे। तब मूसा ने लहू को लेकर लोगों पर छिड़क दिया, और उन से कहा, देखो, यह उस वाचा का लहू है जिसे यहोवा ने इन सब वचनों पर तुम्हारे साथ बान्धी है। (निर्गमन 24:4-8)

इस ब्यौरे में हम पाते हैं कि परमेश्वर का मौखिक वचन उसके लिखित वचन का आधार है, और कि लिखित वचन परमेश्वर का आधिकारिक वाचायी दस्तावेज है जिसकी आज्ञा मानने की जिम्मेदारी उसके लोगों पर थी।

कई सदियों के बाद जब परमेश्वर के लोगों ने पवित्रशास्त्र में लिखित बातों को ठुकरा दिया, तो परमेश्वर ने अन्यजाति के राष्ट्रों को युद्ध में कष्ट देने के लिए भेजा। यशायाह ने इस समय के दौरान सेवा की और यशायाह 42:24 में इन शब्दों को लिखा:

> किस ने याकूब को लुटवाया और इस्राएल को लुटेरों के वश में कर दिया? क्या यहोवा ने यह नहीं किया जिसके विरूद्ध हम ने पाप किया, जिसके मार्गों पर उन्होंने चलना न चाहा और न उसकी व्यवस्था को माना? (यशायाह 42:24)

परमेश्वर यशायाह के दिनों में अपने वचन को लागू करने से नहीं हिचका, वैसे ही जैसे वह अदन की वाटिका में लागू करने से नहीं हिचका था। परन्तु इस बार, जिसका उल्लंघन किया गया था वह परमेश्वर की “व्यवस्था” थी। यह

पवित्रशास्त्र, अर्थात् परमेश्वर और उसके लोगों के बीच वाचा के लिखित वचन थे। जिस प्रकार परमेश्वर का मौखिक वचन आधिकारिक प्रकाशन है, वैसा ही उसका लिखित वचन भी है।

नया नियम भी अपने उदाहरणों के माध्यम से पवित्रशास्त्र के अधिकार की पुष्टि करता है। उदाहरण के तौर पर, यीशु ने अपने कार्यों को सही ठहराने और स्पष्ट करने के लिए पवित्रशास्त्र का प्रयोग किया, जैसे कि यूहन्ना 17:12 में जहां उसने इन शब्दों के साथ प्रार्थना की:

> **मैं ने तेरे उस नाम से, जो तू ने मुझे दिया है, उन की रक्षा की, मैं ने उन की चौकसी की और विनाश के पुत्र को छोड़ उन में से कोई नाश न हुआ, इसलिये कि पवित्रशास्त्र की बात पूरी हो। (यूहन्ना 17:12)**

यीशु ने यहां अपने ग्यारह वफादार चेलों और यहूदा इस्किरियोती, जिसने उसे पकड़वाया था, के बीच भेद प्रकट किया। और इस भेद में उसने दर्शाया कि ग्यारहों को उसकी सुरक्षा और एक को खो देना पवित्रशास्त्र के अनुरूप ही था।

प्रेरितों ने भी बाइबल के अधिकार पर उनके विश्वास को दर्शाया। उदाहरण के तौर पर, पौलुस ने इस प्रमाण के रूप में पवित्रशास्त्र का प्रयोग किया कि मसीहियों को प्रतिशोधी नहीं होना चाहिए। रोमियों 12:19 में उसने लिखा:

> **हे प्रियो, अपना पलटा न लेना; परन्तु क्रोध को अवसर दो, क्योंकि लिखा है, पलटा लेना मेरा काम है, प्रभु कहता है मैं ही बदला दूंगा। (रोमियों 12:19)**

यहां पर पौलुस का तर्क दर्शाता है कि जब यह प्रतिशोध लेने का कार्य परमेश्वर का बताता है तो पुराने नियम में अधिकार होता है। अतः पुराने नियम के प्रति नैतिक जिम्मेदारी में अपने पाठकों को रखने के द्वारा पौलुस ने अपने इस विश्वास को दर्शाया कि पवित्रशास्त्र परमेश्वर का आधिकारिक वचन है जो नए नियम के विश्वासियों को एक साथ बांध कर रखता है।

उदाहरणों के द्वारा अपने अधिकार को प्रमाणित करने के साथ-साथ बाइबल स्पष्ट कथनों के माध्यम से अपने अधिकार को भी प्रमाणित करती है। बाइबल के अधिकार की घोषणा करने वाले दावों का सबसे जाना-पहचाना कथन 2 पतरस 1:19-21 में पाया जाता है, जहां पतरस ने लिखा:

> **हमारे पास जो भविष्यद्वक्ताओं का वचन है, वह इस घटना से दृढ़ ठहरा है और तुम यह अच्छा करते हो, कि जो यह समझकर उस पर ध्यान करते हो... क्योंकि कोई भी भविष्यद्वाणी मनुष्य की इच्छा से कभी नहीं हुई पर भक्त जन पवित्र आत्मा के द्वारा उभारे जाकर परमेश्वर की ओर से बोलते थे। (2 पतरस 1:19-21)**

यहां पतरस ने दर्शाया कि पुराने नियम के भविष्यवाणिय लेखन हमारे समय में भी आधिकारिक हैं। क्योंकि ये भविष्यवाणियां परमेश्वर के द्वारा प्रेरणा-प्राप्त और आधिकारिक थीं, वे ऐसे नैतिक स्तर की रचना करती हैं जिसकी ओर हमें "ध्यान देना" जरूरी है। अर्थात्, हमें उस पर विश्वास करना चाहिए जो भविष्यवक्ताओं ने लिखा और उनकी आज्ञा को मानना चाहिए।

याकूब ने भी इसे स्पष्ट किया कि पुराना नियम आज भी हमारे लिए परमेश्वर की आधिकारिक आज्ञा है। जैसा कि उसने याकूब 2:10-11 में लिखा:

> क्योंकि जो कोई सारी व्यवस्था का पालन करता है परन्तु एक ही बात में चूक जाए तो वह सब बातों में दोषी ठहरा। इसलिये कि जिस ने यह कहा, कि तू व्यभिचार न करना उसी ने यह भी कहा, कि तू हत्या न करना। (याकूब 2:10-11)

ध्यान दीजिए कि याकूब इस बात पर बल देते हुए कहां तक गया। पहला, उसने बल दिया कि लिखित व्यवस्था आज भी लागू होती है। जो इसे तोड़ते हैं वे दोषी ठहरते हैं। दूसरा, याकूब ने पवित्रशास्त्र के अविरल अधिकार को उसके अधिकार पर आधारित किया जिसने अधिकार दिया, अर्थात् परमेश्वर के। क्योंकि बाइबल आज भी परमेश्वर का वचन है, इसमें आज भी परमेश्वर का अधिकार पाया जाता है।

हम नए नियम के अधिकार के दावों को भी पाते हैं। उदाहरण के तौर पर, यीशु ने तब अपने प्रेरितों को अधिकार दिया जब उसने यूहन्ना 13:20 में ऐसा कहा:

> मैं तुम से सच सच कहता हूँ, कि जो मेरे भेजे हुए को ग्रहण करता है, वह मुझे ग्रहण करता है, और जो मुझे ग्रहण करता है, वह मेरे भेजनेवाले को ग्रहण करता है। (यूहन्ना 13:20)

प्रेरितों ने इस अधिकार का प्रयोग केवल बोलने में ही नहीं किया, बल्कि उन दस्तावेजों को लिखने में भी किया जो आज हमारे पास नए नियम में पाए जाते हैं। यह संपूर्ण नए नियम में हर उस उदाहरण में स्पष्ट है जिसमें उन्होंने लिखित आज्ञाएं दी थीं, जैसा कि 2 थिस्सलुनिकियों 3:6 में जहां पौलुस ने लिखा:

> हे भाइयो, हम तुम्हें अपने प्रभु यीशु मसीह के नाम से आज्ञा देते हैं; कि हर एक ऐसे भाई से अलग रहो, जो अनुचित चाल चलता है। (2 थिस्सलुनिकियों 3:6)

यहां पौलुस ने प्रत्यक्ष लिखित आज्ञा दी जिसमें यीशु मसीह द्वारा उसे दिया गया अधिकार निहित था। यह तरीका प्रेरितों का खास तरीका था; उन्होंने प्रायः लिखित रूप में अपने निर्देशों को पहुंचाने के लिए अपने अधिकार का इस्तेमाल किया। क्योंकि नए नियम में ऐसे दस्तावेज पाए जाते हैं जिन्हें या तो प्रेरितों ने लिखा या प्रमाणित किया, इसलिए इसमें प्रेरितों का अधिकार पाया जाता है, जो कि स्वयं मसीह का अधिकार है।

आशय

अब जब हमने देख लिया है कि पवित्रशास्त्र अपने अधिकार को प्रमाणित करता है, तो हमें इस विचार के कुछ आशयों को संक्षिप्त रूप से देखना चाहिए। सबसे सरल रूप में कहें तो, क्योंकि पवित्रशास्त्र में परमेश्वर का अधिकार पाया जाता है, इसलिए हमारी यह नैतिक जिम्मेदारी है कि हमारी सारी इच्छाएं, कार्य, विचार, और भावनाएं इसके सदृश्य बनें। हम यह कह सकते हैं कि नैतिक व्यवहार “प्रभु के वचन का पालन करने” से जुड़ा होता है। और प्रभु के वचन का पालन करना कम से कम दो रूपों में होना चाहिए: हमें इसकी सारी आज्ञाओं को मानने के द्वारा पवित्रशास्त्र की चैड़ाई के सदृश्य बनना चाहिए, और समर्पण एवं बोध के साथ इन आज्ञाओं को मानने के द्वारा हमें इसकी गहराई के सदृश्य भी बनना चाहिए।

एक ओर, परमेश्वर के लोगों को बाबइलीय निर्देशों का पालन करना चाहिए। मसीह के अनुयायियों को न तो उसका पालन नहीं करना चाहिए जो हम पसंद करते हैं और न ही उसे नजरअंदाज करना चाहिए जो हम पसंद नहीं करते। अब हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि ऐसी कुछ बातें जिनकी मांग बाइबल हमसे करती है वे अन्य बातों से अधिक कठिन होती हैं, परन्तु हमें फिर भी उन सबके प्रति समर्पित रहने के लिए बुलाया गया है जिसकी आज्ञा पवित्रशास्त्र में परमेश्वर ने दी है। उदाहरण के लिए निर्गमन 15:26 को सुनें, जहां यहोवा ने इस्राएल से ये शब्द कहे:

> यदि तू अपने परमेश्वर यहोवा का वचन तन मन से सुने, और जो उसकी दृष्टि में ठीक है वही करे, और उसकी सब विधियों को माने, तो जितने रोग मैं ने मिस्रियों पर भेजे हैं उन में से एक भी तुझ पर न भेजूंगा। (निर्गमन 15:26)

जिस समय इस्राएल के लोग लिखित रूप में परमेश्वर की आज्ञाओं को प्राप्त कर रहे थे, परमेश्वर ने अपनी सारी विधियों को मानने के साथ सही कार्य करने को भी रखा। संक्षेप में, जब हम सारे पवित्रशास्त्र का पालन करते हैं तो हम वही करते हैं जो सही होता है।

पवित्रशास्त्र के प्रति समर्पित रहने की हमारी जिम्मेदारी की चैड़ाई 1 राजाओं 11:38 में और भी स्पष्ट रूप में दिखाई देती है जहां परमेश्वर ने यारोबाम से ये शब्द कहे:

> यदि तू मेरी सब आज्ञाएं माने, और मेरे मार्गो पर चले, और जो काम मेरी दृष्टि में ठीक है, वही करे, और मेरी विधियां और आज्ञाएं मानता रहे, तो मैं तेरे संग रहूंगा। (1 राजाओं 11:38)

आपको याद होगा कि इस श्रृंखला के हमारे पहले अध्याय में हमने नैतिक अच्छाई को परमेश्वर द्वारा आशीषित करने के रूप में परिभाषित किया था। यहां, परमेश्वर ने यारोबाम से आशीष की प्रतिज्ञा की यदि यारोबाम वही करे जो सही हो, और परमेश्वर ने स्पष्ट रूप से परिभाषित किया कि “सही क्या है,” अर्थात् वही जिसकी आज्ञा परमेश्वर देता है। अच्छाई परमेश्वर की व्यवस्था के कुछ हिस्सों को मानने और कुछ को ठकराने में नहीं पाई जाती।

यह सत्य कि परमेश्वर अपने लोगों को बिना किसी अपवाद के अपने संपूर्ण वचन के अधिकार को मानने के लिए बुलाता है, हमें हमारे समय में चुनौती प्रदान करना चाहिए, वैसे ही जैसे बाइबल के समयों में परमेश्वर के लोगों को इसने चुनौती दी थी। दुर्भाग्यवश, कई बार विश्वासी इस कल्पना के साथ इस चुनौती का प्रत्युत्तर देते हैं कि परमेश्वर को कोई फर्क नहीं पड़ता यदि हम उसके कुछ ही नैतिक निर्देशों का पालन करें। वे गलत रूप से सोचते हैं कि परमेश्वर ने उन्हें उन आज्ञाओं को नजरअंदाज करने की आजादी दी है जो उन्हें असुखद या कठिन लगती हैं।

परन्तु यदि हम पवित्रशास्त्र की कुछ नैतिक शिक्षाओं के हमारे तिरस्कार को सही ठहराने का प्रयास नहीं भी करते, तो भी हमें यह महसूस करने की जरूरत है कि हम सब अनजाने में कुछ बातों को ही चुनने के जाल में फंस जाते हैं। इस कारणवश, जिन आज्ञाओं को हमने नजरअंदाज कर दिया या भुला दिया है उनको याद करने के लिए हमें निरंतर पवित्रशास्त्र की ओर लौटना चाहिए।

दूसरी बात यह है, परमेश्वर के वचन का हमारे ऊपर अधिकार है, न केवल इसकी शिक्षा की पूरी चैड़ाई में, बल्कि आज्ञाकारिता की उस गहराई में भी जिसकी मांग यह हमसे करता है। उदाहरण के तौर पर, पुराने और नए नियम में बाइबल पवित्रशास्त्र के प्रति आज्ञाकारिता को परमेश्वर के लिए प्रेम के साथ जोड़ती है। नैतिक अच्छाई को ईष्र्यारूपी आज्ञाकारिता या परमेश्वर के प्रति प्रेम के बिना अच्छाई के प्रति प्रेम के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। बल्कि, कर्त्तव्य का आधार यह सच्चाई है कि परमेश्वर ने हमें प्रेम और अधिकार के साथ उसके इच्छित सेवक होने के लिए बुलाया है। सुनिए किस प्रकार मूसा ने इस विचार को व्यवस्थाविवरण 7:9, 11 में व्यक्त किया:

> तेरा परमेश्वर यहोवा... विश्वासयोग्य ईश्वर है; और जो उस से प्रेम रखते और उसकी आज्ञाएं मानते हैं उनके साथ वह हजार पीढ़ी तक अपनी वाचा पालता, और उन पर करूणा करता रहता है; इसलिये इन आज्ञाओं, विधियों, और नियमों को, जो मैं आज तुझे चिताता हूँ, मानने में चौकसी करना। (व्यवस्थाविवरण 7:9, 11)

क्योंकि परमेश्वर ने हमें अपने साथ प्रेमपूर्ण संबंध में बुलाया है, इसलिए हमारी यह जिम्मेदारी है कि हम उसकी उन आज्ञाओं को मानें जो पवित्रशास्त्र में हमारे लिए लिखी गई हैं।

स्वयं यीशु ने लगभग ऐसे ही विचार को नए नियम में दोहराया। यूहन्ना 14:15, 21 में उसने अपने शिष्यों से कहा:

> **यदि तुम मुझ से प्रेम रखते हो, तो मेरी आज्ञाओं को मानोगे। जिस के पास मेरी आज्ञा है, और वह उन्हें मानता है, वही मुझ से प्रेम रखता है। (यूहन्ना 14:15, 21)**

और अपने उदाहरण के द्वारा उसने दर्शाया कि हमें इस प्रकार की प्रेमपूर्ण आज्ञाकारिता पिता के प्रति भी दिखानी है। जैसा कि पद यूहन्ना 14:31 में यीशु ने कहा:

> **संसार जाने कि मैं पिता से प्रेम रखता हूँ, और जिस तरह पिता ने मुझे आज्ञा दी, मैं वैसे ही करता हूँ। (यूहन्ना 14:31)**

पवित्रशास्त्र बार-बार दर्शाता है कि जो नैतिक मांगें परमेश्वर हम पर रखता है वे हमारे प्रति उसके प्रेम पर आधारित हैं और उसके प्रति हमारे प्रेम में पूरी होनी हैं।

अतः हम देखते हैं कि बाइबल के अनुसार, हम तब तक सही कार्य नहीं कर सकते जब तक हमारे पास सही उद्देश्य नहीं होता। दूसरे शब्दों में कहें तो, जब हम अपने हृदय से पवित्रशास्त्र को ग्रहण कर लेते हैं तभी हम परमेश्वर के वचन के अधिकार के प्रति सही रूप में समर्पित हो सकते हैं।

अब जब हमने पवित्रशास्त्र की सामर्थ्य और अधिकार को देख लिया है, अर्थात् वे विशेषताएं जो पवित्रशास्त्र में मुख्य रूप से इसके दैवीय लेखक होने के कारण पाई जाती हैं, तो हमें हमारा ध्यान हमारे दूसरे विषय की ओर लगाना चाहिए: पवित्रशास्त्र की वे विशेषताएं जो इसके मानवीय श्रोताओं से गहराई से जुड़ी होती हैं।

मानवीय श्रोता

जब परमेश्वर ने पवित्रशास्त्र के लेखकों को प्रेरणा और अधिकार प्रदान किया, तो उसके मन में एक विशेष लक्ष्य था। विशेष रूप में, वह अपनी इच्छा और अपने चरित्र के विषय में अपने लोगों को स्पष्ट प्रकाशन देना चाहता था ताकि वे और बेहतर रूप में उसके सदृश्य बन सकें। इसलिए, हमारे अध्याय में इस बिंदू पर हम हमारे ध्यान को उन विशेषताओं की ओर लगाएंगे जो पवित्रशास्त्र में मुख्यतः इसलिए पाई जाती हैं कि परमेश्वर ने इसके लिए अपने लोगों को प्रेरणा दी थी। हमारी चर्चा का यह पहलू पवित्रशास्त्र की तीन विशेषताओं को देखेगा: इसकी स्पष्टता, इसकी आवश्यकता, और इसकी पर्याप्तता। आइए पहले हम पवित्रशास्त्र की स्पष्टता को देखें।

पवित्रशास्त्र की स्पष्टता

जब हम यह कहते हैं कि पवित्रशास्त्र “स्पष्ट” है, तो हमारा अर्थ यह नहीं है कि बाइबल की सब बातें समझने के लिए आसान हैं या बाइबल की सब बातों को सरल या सीधे रूप में कहा गया है। इसकी अपेक्षा, हमारा अर्थ है कि यह धुंधला नहीं है; यह ऐसे गुप्त अर्थों से भरा हुआ नहीं है जो रहस्मयी माध्यमों से या विशेष आत्मिक वरदानों से या कलीसिया के खास अधिकारियों के द्वारा ही जाना जाता है।

जब हम बाइबल की स्पष्टता के विषय को देखते हैं, जिसे कभी-कभी इसकी “सुबोधता” भी कहा जाता है, तो यह दो विषयों को देखने में सहायता करता है: बाइबल की स्पष्टता की प्रकृति, और बाइबल की स्पष्टता के कुछ आशय। आइए पहले हम पवित्रशास्त्र में पाई जाने वाली स्पष्टता की प्रकृति के विषय में सोचें।

प्रकृति

विश्वास का वेस्टमिनस्टर अंगीकरण पवित्रशास्त्र की स्पष्टता की प्रकृति का अच्छा परिचयात्मक सारांश प्रदान करता है। अध्याय 1 के खण्ड 7 में यह कहता है:

> पवित्रशास्त्र की सारी बातें एक जितनी सरल नहीं हैं, और न ही एक जितनी स्पष्ट हैं; फिर भी जो बातें उद्धार के लिए जानने, विश्वास करने, और पालन किए जाने के लिए जरूरी हैं, वे स्पष्ट रूप में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत हैं और पवित्रशास्त्र के किसी न किसी हिस्से में उन्हें स्पष्ट किया गया है, ताकि न केवल विद्वान बल्कि अशिक्षित लोग भी साधारण माध्यमों का सही इस्तेमाल करके उनके पर्याप्त ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं।

यहां अंगीकरण पवित्रशास्त्र की स्पष्टता के दो पहलुओं को संबोधित करता है। पहला, यह "पवित्रशास्त्र की सब बातों" के बारे में बात करता है और दूसरा, यह "उन बातों पर जो जानने, मानने और उद्धार के लिए पालन करने के लिए आवश्यक हैं," ध्यान देता है, अर्थात् सुसमाचार। आइए, सुसमाचार की सापेक्ष स्पष्टता से आरंभ करके इन दोनों विचारों को गहराई से देखें।

सरल रूप में कहें तो, पवित्रशास्त्र सुसमाचार के बारे में इतनी स्पष्टता से बात करता है कि मानसिक रूप से कमजोर व्यक्ति भी इस बात को समझ ले कि उद्धार मसीह में पश्चाताप और विश्वास से आता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हरेक व्यक्ति सुसमाचार को समझ लेता है। जैसे कि अंगीकरण दर्शाता है, हमें "साधारण माध्यमों का सही इस्तेमाल" करना है यदि हम बाइबल की स्पष्टता का लाभ उठाने की अपेक्षा करते हैं। अर्थात्, हमें जिम्मेदारी और निष्ठा के साथ पढ़ना है, न कि लापरवाही से और न ही पवित्रशास्त्र की शिक्षा को तोड़ने-मरोड़ने वाले विचारों के साथ। वास्तविकता में कई कारण होते हैं जो बाइबल के हमारे पाठन को जटिल बना देते हैं, और उनमें से सबसे बड़ा है हमारा पाप। यदि हम बाइबल को समझदारी से काम में लाने से चूक जाते हैं, या हमारे पाप के अनुसार इसे मरोड़ देते हैं, तो हम सुसमाचार को नहीं ढूंढ़ पाएंगे। परन्तु फिर भी, यह हमारी असफलता है; यह पवित्रशास्त्र में स्पष्टता की किसी कमी का परिणाम नहीं है।

यह भी ध्यान दीजिए कि अंगीकरण यह नहीं कहता कि एक व्यक्ति पवित्रशास्त्र का कोई भी हिस्सा पढ़कर उद्धार के मार्ग को खोज सकता है। बल्कि यह कहता है कि सुसमाचार को "पवित्रशास्त्र के किसी-किसी हिस्से" में स्पष्ट किया गया है। अर्थात्, पवित्रशास्त्र संपूर्ण रीति से सुसमाचार के एक स्पष्ट संदेश को प्रस्तुत करता है। एक व्यक्ति जो पूरी बाइबल को नहीं पढ़ता वह उन अनुच्छेदों को देख नहीं सकता जो सुसमाचार को ऐसे रूप में प्रस्तुत करता है कि वह उसे अच्छी तरह से समझ सके। फिर भी, संपूर्ण रूप में देखने पर बाइबल पर्याप्त स्पष्टता के साथ उद्धार के मार्ग को प्रस्तुत करता है कि कोई भी योग्य व्यक्ति पवित्रशास्त्र से उसे सीधे सीख सकता है।

यद्यपि पवित्रशास्त्र मसीह में उद्धार के सुसमाचार के प्रति विशेष रूप से स्पष्ट है, विश्वास का अंगीकरण भी संपूर्ण पवित्रशास्त्र के विषय में कुछ विचारों को बताता है। यह कहता है कि आधारभूत मसीही सुसमाचार के अतिरिक्त के विषय "अपने आप में समान रूप से सरल नहीं हैं और न ही सबके समक्ष समान रूप से स्पष्ट हैं।" दूसरे शब्दों में पवित्रशास्त्र अपनी कुछ शिक्षाओं के विषय में सरल नहीं है। वास्तव में, बाइबल में ऐसी कई बातें हैं जो उतनी स्पष्टता से नहीं सिखाई गईं जितनी स्पष्टता से उद्धार के मार्ग का प्रकाशन दिया गया है।

फिर भी, परमेश्वर ने पवित्रशास्त्र हमें दिया ताकि हम उन बातों को समझ सकें जिन्हें उसने पवित्रशास्त्र में प्रकट किया और उन्हें अपने जीवनों में लागू कर सकें। जैसा कि मूसा ने व्यवस्थाविवरण 29:29 में इस्राएलियों को कहा था:

> गुप्त बातें हमारे परमेश्वर यहोवा के वश में हैं; परन्तु जो प्रकट की गई हैं वे सदा के लिये हमारे और हमारे वंश में रहेंगी, इसलिये कि इस व्यवस्था की सब बातें पूरी ही जाएं। (व्यवस्थाविवरण 29:29)

इस अनुच्छेद में मूसा ने एक महत्वपूर्ण विशिष्टता को दर्शाया जिसे हमें याद रखना चाहिए जब हम मसीही नैतिक शिक्षा में पवित्रशास्त्र के प्रयोग की खोज करते हैं। उसने गुप्त बातों और प्रकट बातों के बीच अंतर प्रकट किया। परमेश्वर हमसे कुछ रहस्य रखता है। वह हमें वे सब बातें नहीं बताता जो वह जानता है, न ही वह हमें उन सब बातों को बताता है जो हम जानना चाहते हैं। ऐसे कई विषय हैं- नैतिक शिक्षा के भी विषय है- जो परमेश्वर अपने में ही रखता है। फिर भी, परमेश्वर ने जो हमें पवित्रशास्त्र में बताया है वह रहस्य नहीं है। पवित्रशास्त्र "प्रकट बातों" की श्रेणी में आता है। जैसा कि मूसा ने कहा, वे हमें इसलिए दिखाई गई हैं ताकि हम उनका "अनुसरण" कर सकें और उनका पालन कर सकें।

आशय

एक स्तर तक परमेश्वर ने नैतिक शिक्षा में हमारी अगुवाई करने के लिए हमारे समक्ष पर्याप्त स्पष्टतता के साथ अपनी इच्छा को प्रकट किया है। उसने हमें बाइबल दी है ताकि "साधारण माध्यमों के सही प्रयोग" के द्वारा- पढ़ने और अध्ययन करने के द्वारा- हम हमारे जीवन के सब क्षेत्रों के लिए परमेश्वर की इच्छा को जान सकते हैं। जैसा कि पौलुस ने 2 तीमुथियुस 3:16 में तीमुथियुस को उत्साहित किया:

> हर एक पवित्रशास्त्र... उपदेश, और समझाने, और सुधारने, और धर्म की शिक्षा के लिये लाभदायक है। (2 तीमुथियुस 3:16)

संपूर्ण पवित्रशास्त्र प्रयोग किए जाने के लिए स्पष्ट रूप से पर्याप्त है यदि अपने आपको निष्ठापूर्ण रूप से इसके अध्ययन के प्रति समर्पित कर देते हैं।

इसी कारणवश, हम सबको नैतिक विषयों में इसकी शिक्षा को पहचानने के लिए बाबइल को खोजने हेतु तैयार रहना चाहिए। अब, हम यह नहीं कह रहे हैं कि पवित्रशास्त्र हर रूप में समझने के लिए सरल है। वास्तव में, पवित्रशास्त्र के कुछ भाग दूसरे भागों से कम स्पष्ट हैं। और इससे बढ़कर, कुछ लोगों में पवित्रशास्त्र के शब्दों को समझने की योग्यता दूसरों से अधिक होती है। जैसा कि पतरस ने 2 पतरस 3:16 में लिखा:

> (पौलुस) ने अपनी सब पत्रियों में भी इन बातों की चर्चा की है जिन में कितनी बातें ऐसी है, जिनका समझना कठिन है, और अनपढ़ और चंचल लोग उन के अर्थों को भी पवित्रशास्त्र की और बातों की नाईं खींचतानकर अपने ही नाश का कारण बनाते हैं। (2 पतरस 3:16)

सब लोगों के पास बाइबल को समझने की समान योग्यता नहीं होती। और न ही सब लोग इसका अध्ययन करने में समान प्रयास करते हैं। फिर भी, यदि हम पर्याप्त रूप से स्वयं को इसमें लगाते हैं तो हम सब नैतिकता के उसके स्तर के सदृश्य बनने के लिए पर्याप्त रूप से परमेश्वर की इच्छा को जान सकते हैं।

अब जब हमने पवित्रशास्त्र की स्पष्टता को खोज लिया है, तो हम दूसरी विशेषता को देखने के लिए तैयार हैं जो पवित्रशास्त्र में मुख्य रूप से इसलिए पाई जाती है क्योंकि इसे मानवीय श्रोताओं के लिए लिखा गया था: इसकी आवश्यकता।

पवित्रशास्त्र की आवश्यकता

जब हम पवित्रशास्त्र की आवश्यकता के बारे में बात करते हैं, तो मन में यह बात है कि लोगों को बाइबल की जरूरत है, विशेषकर नैतिक निर्णय लेने के लिए। जब हम पवित्रशास्त्र के लिए हमारी जरूरत को खोजते हैं, तो हम तीन विषयों को देखेंगे: उद्धार के लिए पवित्रशास्त्र की आवश्यकता, विश्वासयोग्य जीवन के लिए पवित्रशास्त्र की आवश्यकता, और पवित्रशास्त्र के लिए हमारी जरूरत के आशय।

उद्धार

पहली बात, पवित्रशास्त्र उद्धार का मार्ग पाने हेतु लोगों के लिए आवश्यक है। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा, सामान्य, विशेष और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन परस्पर काफी निर्भर रहते हैं। परन्तु सामान्य और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन मनुष्यों को परमेश्वर के स्तर तक न पहुंचने पर दोषी ठहराने के बारे में पर्याप्त जानकारी देता है। केवल पवित्रशास्त्र उद्धार को प्राप्त करने में पर्याप्त जानकारी देता है। सुनिए किस प्रकार पौलुस ने इस विषय पर रोमियों 10:13-17 में बात की:

> **जो कोई प्रभु का नाम लेगा, वह उद्धार पाएगा। फिर जिस पर उन्होंने विश्वास नहीं किया, वे उसका नाम क्योंकर लें? और जिस की नहीं सुनी उस पर क्योंकर विश्वास करें? और प्रचारक बिना क्योंकर सुनें?... सो विश्वास सुनने से, और सुनना मसीह के वचन से होता है। (रोमियों 10:13-17)**

पौलुस की बात यहां पर स्पष्ट है: सुसमाचार का संदेश एक आम माध्यम है जिसके द्वारा परमेश्वर लोगों को विश्वास प्रदान करता है। और मसीह के वचन के बिना लोगों को सुसमाचार का संदेश नहीं मिल सकता। यह मसीह के वचन को अपवादात्मक परिस्थितियों के अतिरिक्त सभी परिस्थितियों में उद्धार का आवश्यक माध्यम बना देता है। एक मात्र अपवाद जो धर्मविज्ञानी विशेषकर पहचानते हैं वह है ऐसे विषय जिसमें बच्चे या अन्य मानसिक रूप से अक्षम लोग सम्मिलित होते हैं।

परन्तु मसीह का यह वचन क्या है? रोमियों के दसवें अध्याय में पौलुस के मन में मुख्य रूप से सुसमाचार का प्रचार था। परन्तु उसके मन में सुसमाचार के संदेश के स्रोत के रूप में स्वयं पवित्रशास्त्र भी था। उदाहरण के तौर पर "जो कोई प्रभु का नाम लेगा, वह उद्धार पाएगा" वास्तव में व्यवस्थाविवरण 30 से लिया गया उद्धृण है। इस रूप में पौलुस द्वारा पवित्रशास्त्र का प्रयोग एक उदाहरण के अनुसरण को दर्शाता है जो संपूर्ण पवित्रशास्त्र में पाया जाता है। विशेष रूप में, बाइबल में सुसमाचार की घोषणा पवित्रशास्त्र के लिखित वचन से काफी गहराई से जुड़ी है। उदाहरण के तौर पर, पुराने नियम में परमेश्वर ने प्रायः अपने संदेश सीधे भविष्यवक्ताओं को दिए जिन्होंने लोगों से परमेश्वर के वचन कहे। परन्तु परमेश्वर ने इस बात को निश्चित किया कि भविष्यवाणिय वचन लिखित रूप में रखा जाए ताकि यह उनके द्वारा भी सीख लिया जाए जो प्रचार के समय उपस्थित नहीं थे। पुराने नियम के इस उदाहरण का अनुसरण करते हुए, प्रेरितों ने पहले सीधे यीशु से सुसमाचार को सीखा और फिर न केवल प्रचार के माध्यम से बल्कि नए नियम में अपने लेखनों के द्वारा भी उन्हें दूसरों तक पहुंचाया।

इस प्रक्रिया की व्यावहारिक क्रिया यह है कि मनुष्य सामान्यतः सुसमाचार के ज्ञान को प्राप्त करते हैं, और इस प्रकार या तो स्वयं बाइबल पढ़ने के द्वारा या बाइबल पर आधारित प्रचार के द्वारा पवित्रशास्त्र से विश्वास और उद्धार को प्राप्त करते हैं। निसंदेह, पवित्रशास्त्र के लिखित वचन और पवित्रशास्त्र पर आधारित प्रचार में महत्वपूर्ण अंतर पाया जाता है। पवित्रशास्त्र परमेश्वर से प्रेरणा-प्राप्त है, त्रुटिरहित है और हर विषय में पूरी तरह से आधिकारिक है। प्रचार ऐसा नहीं है। जब तक प्रचार पवित्रशास्त्र के प्रति विश्वासयोग्य रहता है, तब तक यह सच्चा, आधिकारिक, और सामर्थी है। परन्तु क्योंकि हम पतित मनुष्य हैं, प्रचार कभी पूरी तरह से पवित्रशास्त्र के प्रति सच्चा नहीं हो पाता। प्रचार के विपरीत,

पवित्रशास्त्र स्थिर और अपरिवर्तनीय है; यह निर्भर रहने योग्य और विश्वासयोग्य स्तर है। प्रचार, कलीसियाई परंपरा, धर्मविज्ञानी निर्देश, और जानकारी के कई अन्य स्रोत सब सहायक हैं। परन्तु इन सब में सत्य और भ्रांति का मिश्रण होता है। केवल पवित्रशास्त्र पूरी तरह से, बिना किसी त्रुटि के, संदेहरहित रूप में विश्वसनीय है। इसलिए, पवित्रशास्त्र सुसमाचार के अभिलेख और सुसमाचार के प्रचार के आधार और मानक के रूप में आवश्यक है।

विश्वासयोग्य जीवन

दूसरा, पवित्रशास्त्र नैतिक जीवन के लिए भी आवश्यक है। आपको याद होगा कि पिछले अध्याय में हमने प्रमाणित किया था कि सामान्य, विशेष और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन सब सच्चे और आधिकारिक हैं। फिर हम पवित्रशास्त्र को आवश्यक प्रकाशन के विशेष विषय के रूप में क्यों अलग करते हैं? इसका उत्तर यह है कि जहां सामान्य और अस्तित्व प्रकाशन त्रुटिरहित और आधिकारिक हैं, वहीं वे व्याख्या करने के रूप में पवित्रशास्त्र से कठिन है। पाप ने मनुष्यजाति में भ्रष्ट प्रकृति को डाल दिया है जिससे हम उस शुद्ध चिन्तन को नहीं देख सकते जो परमेश्वर चाहता है। फलस्वरूप, यह जानना प्रायः बहुत मुश्किल हो जाता है कि सामान्य और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन की व्याख्या कैसे की जाए। कभी-कभी यह बताना लगभग असंभव हो जाता है कि जो हम देख रहे हैं वह सृष्टि में परमेश्वर के अभिप्राय का परिणाम है, या पाप द्वारा सृष्टि के भ्रष्टाचार का परिणाम है।

और इसके अतिरिक्त, पवित्रशास्त्र सामान्य और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन से अधिक स्पष्टता और प्रत्यक्ष रूप में बात करता है, और इस प्रकार पवित्रशास्त्र पर हमारे नैतिक निर्णयों को प्रकाशन के अन्य रूपों पर आधारित निर्णयों से अधिक विश्वसनीय बनाते हैं। इसीलिए, विश्वास का वेस्टमिनस्टर अंगीकरण अध्याय 1, खण्ड 10 जानकारी के दूसरे स्रोतों से अधिक पवित्रशास्त्र के महत्व पर बल देता है:

> सर्वोच्च न्यायी, जिसके द्वारा धर्म के सारे विवादों को निपटाया जाता है, और परिषदों की सारी विधियों, प्राचीन लेखकों के अभिप्रायों, मनुष्यों की शिक्षाओं, और वैयक्तिक आत्माओं को जांचा जाता है, और जिसके निर्णय में हम शरण लेते हैं, वह कोई और नहीं परन्तु पवित्रशास्त्र में बात करने वाला पवित्र आत्मा है।

अंगीकरण यहां पर यह कहता है कि बाकी सारे स्रोत भी महत्वपूर्ण हैं, परन्तु बाइबल सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि पवित्रशास्त्र के माध्यम से ही पवित्र आत्मा स्पष्ट रूप से बात करता है।

आशय

फिर, पवित्रशास्त्र की आवश्यकता के कुछ नैतिक आशय क्या हैं? एक बहुत महत्वपूर्ण भाव है जिसमें हम पवित्रशास्त्र की शिक्षा को पाए बिना नैतिक नहीं बन सकते। और जैसा कि हमने इस अध्याय में पहले देखा था, पवित्रशास्त्र की आधारभूत बातों को सीखना और मानना उद्धार के लिए आवश्यक है। चाहे हम सीधे बाइबल का अध्ययन करें या दूसरों से इसकी मुख्य शिक्षाओं को सीखें, केवल जो मसीह में हैं वही सच्ची नैतिकता के योग्य हैं। सारांश में, पवित्रशास्त्र के बिना उद्धार संभव नहीं है, और इसलिए नैतिकता संभव नहीं है। वे लोग जो सोचते हैं कि वे पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं को नजरअंदाज करके भी नैतिक बन सकते हैं, वे वास्तव में बहुत ही गलत सोचते हैं। इस भाव में, पवित्रशास्त्र नैतिक व्यवहार की हमारी योग्यता के लिए आवश्यक है।

परमेश्वर के वचन की इस आधारभूत आवश्यकता के अतिरिक्त, पवित्रशास्त्र मानवीय नैतिकता के लिए भी जरूरी है क्योंकि इसमें ऐसी जानकारी है जो सामान्य और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन में नहीं होती। नैतिक निर्णय लेने में मसीहियों के लिए जीवन के अपने अनुभवों, दूसरों के सुझावों, और अपने नैतिक विवेक पर काफी हद तक निर्भर रहना कोई असामान्य बात नहीं है। और जैसा कि हम देख चुके हैं, ये और सामान्य एवं अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन की अन्य

विशेषताएं ध्यान देने के लिए महत्वपूर्ण हैं। परन्तु हमें इस बात को भी पहचानना है कि अनेक परिस्थितियों में सामान्य और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन इतने स्पष्ट नहीं होते कि वे हमें कार्य का एक सही मार्ग दिखाएं, वहीं पवित्रशास्त्र पर्याप्त विवरण के साथ परमेश्वर की इच्छा को प्रकट करता है कि वह हमें वह सिखाए जो सही है।

उदाहरण के तौर पर, प्रेरितों के काम 15 में वह विवाद पाया जाता है जो आरंभिक कलीसिया में तब उठ खड़ा हुआ जब गैरयहूदी मसीहियत को ग्रहण करने लग गए। कलीसिया के भीतर के कुछ लोगों ने माना कि गैरयहूदियों को उसी तरह से मूसा की व्यवस्था का पालन करने का निर्देश दिया जाए जैसे उस समय के यहूदी धर्म में होता था। अर्थात् वे चाहते थे कि गैरयहूदियों का भी खतना हो, वे मन्दिर में बलिदान चढ़ाएं, और उसी रूप में अपने जीवन में व्यवस्था को लागू करें जैसे उस समय के यहूदियों की परंपरा थी। दूसरी ओर, पौलुस और बरनबास जैसे लोगों ने तर्क दिया कि परमेश्वर ने गैरयहूदियों से पहली सदी के यहूदियों के समान जीवन जीने की अपेक्षा नहीं की थी।

यह विषय इतना पेचीदा था कि प्रेरित और प्रचीन इस विषय पर चर्चा करने और इसे जांचने के लिए मिले। कुछ लोगों के सुझाव खतनारहित गैरयहूदियों के बीच पवित्र आत्मा की सेवकाई की वास्तविकता के विरुद्ध थे। और जानकारी के ये स्रोत एक संतोषजनक समाधान को प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं थे। परन्तु जब याकूब ने पवित्रशास्त्र को देखा जिसने इस समस्या को संबोधित किया, तो कलीसिया उसके साथ एकजुट खड़ी हो गई। पवित्रशास्त्र आवश्यक था क्योंकि सामान्य और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन इस नैतिक प्रशन का उत्तर देने में पर्याप्त नहीं थे।

इस विवाद को सुलझाने के लिए, यीशु के भाई याकूब ने आमोस 9:11-12 खोला। प्रेरितों के काम 15:16-17 में याकूब ने इस प्रकार आमोस को उद्धृत किया:

> **इसके बाद मैं फिर आकर दाऊद का गिरा हुआ डेरा उठाऊंगा, और उसके खंडहरों को फिर बनाऊंगा, और उसे खड़ा करूंगा। इसलिये कि शेष मनुष्य, अर्थात् सब अन्यजाति जो मेरे नाम के कहलाते हैं, प्रभु को ढूंढें। (प्रेरितों के काम 15:16-17)**

इस लेख से याकूब समझ गया था कि परमेश्वर जब अपने राज्य की पुनर्स्थापना करेगा तो अनेक गैरयहूदियों को उसमें शामिल करेगा। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि विश्वास में आए लोग प्रभु के पास आने के बाद भी गैरयहूदी ही बने रहेंगे। पुराने नियम में, जो गैरयहूदी परिवर्तित हुए वे यहूदी बन गए थे और उन्होंने पारंपरिक यहूदी रीतियों को अपना लिया था। परन्तु आमोस ने दर्शाया कि जब परमेश्वर मसीह में अपने राज्य को पुनर्स्थापित करेगा तो गैरयहूदी यहूदी परंपराओं को अपनाने की बंदिश के बिना उसमें सम्मिलित किए जाएंगे।

पवित्रशास्त्र की स्पष्टता और आवश्यकता के इस ज्ञान के साथ, हम पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता को खोजने के लिए तैयार हैं।

पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता

आधारभूत रूप से यह कहना कि पवित्रशास्त्र "पर्याप्त" है, इसका अर्थ है कि यह उन उद्देश्यों को पूरा करने के योग्य है जिसके लिए इसे लिखा गया था। परन्तु यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यह सरल विचार जटिल बन जाता है क्योंकि मसीहियों के लिए पवित्रशास्त्र के उद्देश्य पर सहमत होना कठिन है। इसलिए, जब हम पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता के विषय को जांचते हैं, तो हम इसकी पर्याप्तता के संबंध में पवित्रशास्त्र के उद्देश्य को देखने के द्वारा आरंभ करेंगे। फिर, हम पर्याप्तता की कुछ आम भ्रांतियों को संबोधित करेंगे, और अंत में हम उस जाने-पहचाने पर भ्रामक विचार के बारे में बात करेंगे जो कहता है कि पवित्रशास्त्र कुछ विषयों पर चुप है।

उद्देश्य

पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता और उद्देश्य के बीच संबंध के विषय में विश्वास के वेस्टमिनस्टर अंगीकरण को पुनः देखना सहायक होगा, जिसके अध्याय 1, खण्ड 6 में इस विचार का बहुत अच्छा सारांश पाया जाता है। अंगीकरण इस विषय को इस तरह से कहता है:

> अपनी महिमा, मनुष्य के उद्धार, विश्वास और जीवन के लिए आवश्यक सब बातों के बारे में परमेश्वर की संपूर्ण सम्मति या तो अभिव्यक्त रूप में पवित्रशास्त्र में समाहित की गई है, या अच्छे और आवश्यक परिणामों के द्वारा जिसे पवित्रशास्त्र से लिया जा सकता हैः जिसमें कभी कुछ भी जोड़ा नहीं जा सकता, चाहे वह आत्मा के नए प्रकाशनों के द्वारा हो या मनुष्यों की परंपराओं के द्वारा।

अंगीकरण सही रूप में यह निष्कर्ष निकालता है कि पवित्रशास्त्र के विविध उद्देश्य हैं। यह दर्शाता है कि बाइबल हमें परमेश्वर की महिमा करने को सिखाने के लिए, स्त्रियों और पुरुषों को उद्धार की ओर लाने, विश्वासियों को उनके विश्वास के बारे में निर्देश देने, और मसीही जीवन में अगुवाई देने के लिए लिखी गई थी। बाइबल के उद्देश्य के बारे में ये विचार पवित्रशास्त्र से ही आते हैं।

उदाहरण के तौर पर, बाइबल कई स्थानों पर यह सिखाती है कि पवित्रशास्त्र हमें इसलिए दिया गया है कि परमेश्वर की आज्ञाओं को मानने के द्वारा परमेश्वर की महिमा कर सकें। एक स्थान जहां पर यह स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है, वह है व्यवस्थाविवरण में वाचायी श्रापों में। व्यवस्थाविवरण 28:58-59 में मूसा ने परमेश्वर की लिखित आज्ञाओं के पालन और परमेश्वर की महिमा के बीच स्पष्ट परस्पर संबंध को दर्शाया।

> यदि तू इन व्यवस्था के सारे वचनों के पालन करने में, जो इस पुस्तक में लिखे हैं, चौकसी करके उस आदरनीय और भययोग्य नाम का, जो यहोवा तेरे परमेश्वर का है भय न माने, तो यहोवा तुझ को और तेरे वंश को अनोखे अनोखे दण्ड देगा। (व्यवस्थाविवरण 28:58-59)

बाइबल की रचना इस रूप में की गई है कि वह हमें परमेश्वर की महिमा करनी सिखाए, और यह इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए पर्याप्त है। पवित्रशास्त्र में वे सभी स्तर पाए जाते हैं जिनकी जानकारी हमें उसकी महिमा करने के लिए होनी चाहिए।

“मनुष्य के उद्धार, विश्वास और जीवन” के विषय में पौलुस ने तीमुथियुस को पवित्रशास्त्र के अपने अध्ययन में दृढ़ बने रहने को कहा ताकि वह इन लाभों को प्राप्त कर सके जिनके लिए पवित्रशास्त्र की रचना की गई थी। इस संदर्भ में 2 तीमुथियुस 3:15-17 में पौलुस ने पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता को स्पष्ट तरीके से सिखाया। उसने पद 15 में इन शब्दों को लिखा:

> पवित्रशास्त्र... तुझे मसीह पर विश्वास करने से उद्धार प्राप्त करने के लिये बुद्धिमान बना सकता है। (2 तीमुथियुस 3:15)

जब पौलुस ने लिखा कि पवित्रशास्त्र हमें “उद्धार प्राप्त करने के लिये बुद्धिमान” बनाने के “योग्य” है तो उसका अर्थ था कि बाइबल को पढ़ने के द्वारा हम उन बातों को सीख सकते हैं जो बातें हमारे उद्धार के लिए हमें जाननी जरुरी हैं। पौलुस ने इसे सत्य माना था क्योंकि वह केवल यही नहीं जानता था कि बाइबल सामर्थी है, जैसा कि हमने इस अध्याय में पहले देखा था, बल्कि यह भी कि इसकी रचना इन विशेष लाभों को प्रदान करने के लिए की गई थी। क्योंकि बाइबल इस उद्देश्य को पूरा करने के योग्य है, इसलिए इसे उद्धार के लिए पर्याप्त कहा जा सकता है।

लगभग इसी प्रकार, पवित्रशास्त्र "विश्वास" के लिए भी योग्य है। 2 तीमुथियुस 3:15-17 में पौलुस के शब्दों पर फिर से ध्यान दें। पौलुस ने कहा था कि पवित्रशास्त्र... तुझे मसीह पर विश्वास करने से उद्धार प्राप्त करने के लिये बुद्धिमान बना सकता है। उद्धार देने वाले विश्वास की बातें बाइबल में उस माध्यम के रूप में प्रकट हैं जिनके द्वारा हम धर्मी ठहराए जाते हैं और हमारे उद्धार को परमेश्वर से प्राप्त करते हैं।

अंत में, बाइबल "जीवन" में, अर्थात् मसीह में हमारे उद्धाररूपी विश्वास की निरंतर प्रक्रिया में, हमारी अगुवाई के लिए पर्याप्त है। 2 तीमुथियुस 3:16-17 में पौलुस का जाना-पहचाना कथन इसे स्पष्ट करता है:

> **हर एक पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है और उपदेश, और समझाने, और सुधारने, और धर्म की शिक्षा के लिये लाभदायक है। ताकि परमेश्वर का जन सिद्ध बने, और हर एक भले काम के लिये तत्पर हो जाए। (2 तीमुथियुस 3:16-17)**

हमारे उद्धार के लिए मसीह में विश्वास की ओर लाने के अभिप्राय के साथ, पवित्रशास्त्र का उद्देश्य हमें "हर भले कार्य" के लिए तैयार करना भी है- कुछ भले कार्यों के लिए नहीं बल्कि हर भले कार्य के लिए। क्योंकि इसका अभिप्राय "हर भले कार्य" के लिए हमें तैयार करना है, और क्योंकि यह अपने नियोजित कार्य को पूरा करने में सामर्थी है, इसलिए यह कहना सही होगा कि पवित्रशास्त्र हर भले कार्य के बारे में पर्याप्त रूप से बात करता है। यदि हम सारी बाइबल को सही रूप में समझ लेते हैं और लोगों और परिस्थिति के बारे में पर्याप्त समझ रखते हैं तो हम किसी भी नैतिक विषय के बारे में सही निर्णय लेने के लिए पर्याप्त रूप से परमेश्वर के स्तरों को जान पाएंगे।

अब जीवन के लिए पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता को समझना एक गंभीर प्रश्न उठाता है: किस प्रकार एक पुस्तक, चाहे वह बाइबल जितनी बड़ी भी क्यों न हो, हमें हर भले कार्य के लिए तैयार करके प्रत्येक नैतिक समस्या का समाधान कैसे कर सकती है? सत्य यह है कि बाइबल प्रत्यक्ष रूप में प्रत्येक नैतिक विषय को संबोधित नहीं करती। पवित्रशास्त्र प्रत्यक्ष रूप से जीवन के कुछ सीमित विषयों के बारे में ही बात करता है, जैसे कि हमारे विश्वास की आधारभूत बातें और परमेश्वर एवं लोगों के प्रति हमारी मूलभूत जिम्मेदारियां। परन्तु ऐसा करने में पवित्रशास्त्र ऐसे सिद्धान्तों को रखता है जिन्हें बाइबल में उल्लिखित विषयों के बाहर भी लागू कर सकते हैं। इसीलिए अंगीकरण "पवित्रशास्त्र में व्यक्त रूप में रखी गई बातों" और "अच्छे और आवश्यक परिणाम" के आधार पर पवित्रशास्त्र से ली गई बातों के बीच अंतर को दर्शाता है। फिर भी, सभी विषयों में पवित्रशास्त्र हमें वह सारी जानकारी देता है जिसकी जरूरत हमें परमेश्वर के नैतिक स्तरों को खोजने के लिए पड़ती है।

पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता के विषय में अंगीकरण की व्याख्या का अंतिम बिंदू जिस पर हमें ध्यान देना चाहिए, वह है पवित्रशास्त्र की योग्यता कि वह संपूर्ण है, जिसमें

> **. . . कभी कुछ भी जोड़ा नहीं जा सकता, चाहे वह आत्मा के नए प्रकाशनों के द्वारा हो या मनुष्यों की परंपराओं के द्वारा।**

पवित्रशास्त्र में वे सभी नियम पाए जाते हैं जिनकी हमें मसीही होने के नाते जरूरत है। मानवीय परंपराओं और अधिकार संरचनाओं, जैसे कि लोक एवं कलीसियाई प्रशासन, की प्रभु के लिए आज्ञा माननी जरूरी है, परन्तु उन्हें कभी परम या संपूर्ण मानकों के रूप में नहीं माना जाता। मानवीय मानकों का पालन करने या पालन न करने का निर्णय पवित्रशास्त्र के मानकों पर आधारित होना चाहिए। और मानवीय मानक जब बाइबलीय मानकों विरोध में होते हैं तो वे सदैव ठुकराए जाएंगे।

हम पवित्रशास्त्र में इसे बार-बार देखते हैं। उदाहरण के तौर पर, यीशु के दिनों में स्थापित यहूदी अगुवों ने मन्दिर के क्षेत्र में धन बदलने वालों और बेचने वालों को अनुमति दी थी। परन्तु जब यीशु ने इसे देखा तो वह क्रोधित हो गया

और उन्हें मन्दिर से भगा दिया क्योंकि मानवीय अगुवों ने मन्दिर के क्षेत्र में पवित्रशास्त्र के मानकों के उल्लंघन की अनुमति दे दी थी। हम मत्ती 21:12-13 में इस वर्णन को पाते हैं:

> **यीशु ने परमेश्वर के मन्दिर में जाकर, उन सब को, जो मन्दिर में लेन देन कर रहे थे, निकाल दिया... और उन से कहा, लिखा है, कि मेरा घर प्रार्थना का घर कहलाएगा; परन्तु तुम उसे डाकुओं की खोह बनाते हो। (मत्ती 21:12-13)**

यीशु सही रूप में समझ गया था कि यशायाह 56:7, जिसको उसने उद्धृत किया था, ने बाइबलीय मानक को प्रकट किया कि मन्दिर प्रार्थना के लिए समर्पित होना था। परन्तु यहूदी अगुवों ने मन्दिर के प्रांगण को सांसारिक आदान-प्रदान के द्वारा अशुद्ध करने की अनुमति दे दी थी। यीशु का दोषारोपण कि वे मन्दिर को "डाकुओं की खोह" बना रहे थे, वास्तव में बहुत अधिक सशक्त था। यह वाक्यांश यिर्मयाह 7:11 से लिया गया था जहां यह मूर्तिपूजकों और उन हिंसक अपराधियों को दर्शाता है जो उसके मन्दिर में परमेश्वर के समक्ष पाखण्ड किया करते थे। अपने कार्यों और शब्दों के द्वारा यीशु ने दर्शाया कि किसी भी मानवीय नियम या परंपरा का पालन तब पापमय हो जाता है जब मानवीय मानक पवित्रशास्त्र के विरोध में होता है।

हर विषय में पवित्रशास्त्र सारे नैतिक मानको को स्थापित करने में पर्याप्त है। फिर भी, मनुष्यों की नैतिक विधियां तब तक ही वैध और माननेयोग्य होती हैं जब वे बाइबलीय मानकों के अनुरूप हों। परन्तु जब मानवीय मानक बाइबलीय मानकों का विरोध करते हैं, तो एक मसीही को उन्हें ठुकरा देना चाहिए।

पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता की एक सही समझ को मन में रखते हुए, अब हमें बाइबल की पर्याप्तता की आम भ्रांतियों की ओर हमारे ध्यान को लगाना चाहिए।

भ्रांतियां

हम इन भ्रांतियों को दो सामान्य श्रेणियों में विभाजित करेंगे: पहली, ऐसे दृष्टिकोण जो पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता को बढ़ा-चढ़ा कर दर्शाते हैं, और दूसरी, ऐसे दृष्टिकोण जो पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता को कम आंकते हैं। आइए, ऐसे दृष्टिकोणों के साथ आरंभ करें जो पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता को बढ़ा-चढ़ा कर दर्शाते हैं।

सामान्यतः, वे जो पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता को बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं उनमें बाइबल के प्रति मजबूत समर्पण पाया जाता है। परन्तु उनमें प्रायः सामान्य और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशनों के प्रति समर्पण का अभाव पाया जाता है। फलस्वरूप, वे भ्रांतिपूर्वक मानते हैं कि वे विशेष परिस्थितियों और लोगों के ज्ञान के बिना ही नैतिक प्रश्नों पर पवित्रशास्त्र को सही रूप से लागू कर सकते हैं। वे मानते हैं कि नैतिक निर्णय लेना बाइबल पढ़ने और उसकी आज्ञा मानने जितना सरल है। परन्तु वास्तविकता में, इससे पहले कि हम बाइबल की आज्ञा मानें और उसे लागू करें, हमें उन लोगों और परिस्थितियों के बारे में भी कुछ ज्ञान होना चाहिए जिन पर उसे लागू कर रहे हैं। परमेश्वर ने हमें सामान्य और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन में जानकारी प्रदान की है। यदि हम प्रकाशन के इन अन्य रूपों को नजरअंदाज कर देते हैं तो हम उन साधनों को नजरअंदाज कर रहे हैं जो उसने हमें पवित्रशास्त्र को पढ़ने और समझने के लिए दिए हैं।

परन्तु सारी भ्रांतियां बाइबल की पर्याप्तता को बढ़ा-चढ़ा कर बताने पर ही आधारित नहीं हैं। बहुत सारी भ्रांतियां इसे कम आंकने से भी निकलती हैं। यह भ्रांति सामान्यतः इस बात पर बल देने से आती है कि बाइबल जीवन के कुछ सीमित क्षेत्रों में ही हमारी अगुवाई करने में पर्याप्त है, और कि यह कुछ ही विषयों में हमें नैतिक निर्देश देती है। उदाहरण के तौर पर, थॉमस अक्विनास ने तर्क दिया कि सामान्य और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन अनेक नैतिक सिद्धांतों को सिखाने में पर्याप्त हैं और कि पवित्रशास्त्र उन विषयों के बारे में जानकारी देने के द्वारा हमारे ज्ञान को बढ़ाता है जो प्राकृतिक एवं अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन में नहीं आते, जैसे कि उद्धार का मार्ग। हाल ही के वर्षों में, कई अन्यों ने तर्क

दिया कि बाइबल एक पत्नी से विवाह करने, समलैंगिकता, गर्भपात, और इच्छामृत्यु जैसे विषयों को संबोधित नहीं करती।

जैसा कि हम देख चुके हैं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शिक्षा के माध्यम से, पवित्रशास्त्र हमें नैतिक नियमों की एक व्यापक प्रणाली प्रदान करता है। इस भाव में, जब अपनी महिमा और हमारे उद्धार, विश्वास और मसीही जीवन के लिए परमेश्वर की इच्छा को प्रकट करने की बात आती है तो बाइबल की पर्याप्तता असीमित हो जाती है। सामान्य और अस्तित्व-संबंधी प्रकाशन में कुछ ये नियम भी पाए जाते हैं, परन्तु उनमें पवित्रशास्त्र में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पाए जाने वाले नियमों के अतिरिक्त कुछ नहीं पाया जाता। सरल रूप में कहें तो बाइबल जीवन के हर क्षेत्र के बारे में पर्याप्त रूप में बात करती है, इसलिए परमेश्वर के प्रति हमारा सच्चा कर्त्तव्य सदैव पवित्रशास्त्र के नियमों को लागू करना है।

चुप्पी

इस समय हम उस जाने-पहचाने परन्तु भ्रामक विचार के बारे में बात करेंगे कि पवित्रशास्त्र कुछ विषयों पर चुप है, शायद यह एक सबसे आम रूप है जिसमें अच्छे मसीही भी पवित्रशास्त्र की पर्याप्तता को कम आंकते हैं। विशेषकर, मसीही प्रायः सिखाते हैं कि जीवन के कुछ विषय नैतिक रूप में "उदासीन" है क्योंकि पवित्रशास्त्र हमें इन विषयों के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं देता है। ऐतिहासिक रूप में, इन्हें "आदियाफोरा" के रूप में जाना जाता है। विशिष्ट दृष्टिकोण यह रहा है कि उदासीन बातें अपने आप में न तो सही होती और न ही गलत।

यद्यपि कलीसिया के पूरे इतिहास में अनेक लोग ऐसे भी रहे हैं जिन्होंने ऐसे दृष्टिकोण रखे थे, यह दृष्टिकोण वास्तव में पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं के विरूद्ध है। उदाहरण के तौर पर, जहां धर्मविज्ञानी अव्यक्तिगत बातों को उदासीन या "निष्पक्ष" के रूप में कहते हैं, वहीं बाइबल उन्हें अच्छे के रूप में कहती है। मनुष्यजाति के पाप में पतन के बाद भी पौलुस ने बल दिया कि सब कुछ अच्छा था। जैसा कि उसने 1 तीमुथियुस 4:4-5 में लिखा:

> **परमेश्वर की सृजी हुई हर एक वस्तु अच्छी है: और कोई वस्तु अस्वीकार करने के योग्य नहीं; पर यह कि धन्यवाद के साथ खाई जाए। क्योंकि परमेश्वर के वचन और प्रार्थना के द्वारा शुद्ध हो जाती है। (1 तीमुथियुस 4:4-5)**

पौलुस ने इस संदर्भ में विशेषकर भोजन के बारे में बात की, परन्तु यह सिद्धांत बहुत विशाल है जो सारी सृष्टि में व्यापक है, जिस प्रकार परमेश्वर ने सृष्टि के सप्ताह के अंत में स्वयं घोषणा की थी। इस कारणवश, अव्यक्तिगत वस्तुएं भी "उदासीन" नहीं हैं; वे अच्छी हैं।

कुछ धर्मविज्ञानियों ने "उदासीन" या आदियाफोरा शब्द को दो या अधिक अच्छे विकल्पों में से चुनने के लिए भी लागू किया है। उन्होंने सुझाव दिया कि जब सारे विकल्प अच्छे होते हैं, तो पवित्रशास्त्र इस बात के प्रति उदासीन हो जाता कि किसे चुने। परन्तु पवित्रशास्त्र सिखाता है कि परमेश्वर कुछ अच्छे विकल्पों को अन्य अच्छे विकल्पों की अपेक्षा अधिक आशीष देता है, और कि पवित्रशास्त्र कभी-कभी एक अच्छे विकल्प की अपेक्षा दूसरे अच्छे विकल्प को चुनता है। उदाहरण के लिए, 1 कुरिन्थियों 7:38 में पौलुस ने लिखा:

> **सो जो अपनी कुंवारी का ब्याह कर देता है, वह अच्छा करता है और जो ब्याह नहीं कर देता, वह और भी अच्छा करता है। (1 कुरिन्थियों 7:38)**

अब यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि धर्मविज्ञानी उन विशेष परिस्थितियों पर सहमत नहीं हैं जिन्हें पौलुस ने यहां संबोधित किया है। परन्तु उसके शब्द इस बात को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त हैं कि विवाह करना और न करना दोनो अच्छे विकल्प थे, और कि विवाह न करना बेहतर विकल्प था। इस भाव में, पवित्रशास्त्र वास्तव में "उदासीन" नहीं है, चाहे हमें अच्छे विकल्पों के बीच चुनना भी पड़े।

आपको याद होगा कि हमारे पहले अध्याय में हमने "अच्छे" को परमेश्वर के आशीष को प्राप्त करने वाले, और "बुरे" को उसकी आशीष को न प्राप्त करने वाले के रूप में परिभाषित किया था। इस परिभाषा के द्वारा मनुष्यों के पहलू और उनके जीवन या तो अच्छे होते हैं या बुरे; कुछ भी या कोई भी उदासीन या निष्पक्ष नहीं होता। परमेश्वर या तो आशीष देता है या नहीं देता- कोई बीच का रास्ता नहीं है। यदि वह किसी बात को आशीष देता है, तो यह अच्छी है; यदि वह आशीष नहीं देता, तो यह बुरी है।

यह कहने के बावजूद, यह सही है कि कुछ ऐसे शब्द, विचार और कार्य होते हैं जो कुछ परिस्थितियों में तो अच्छे होते हैं और दूसरी परिस्थितियों में बुरे होते हैं। उदाहरण के तौर पर, वैवाहिक संबंध के भीतर लैंगिक संबंध अच्छे होते हैं, परन्तु वैवाहिक संबंधों से बाहर ये बुरे होते हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि लैंगिक संबंध अपने आप में न तो अच्छे हैं और न बुरे। बल्कि, वे अच्छे हैं, जैसा कि परमेश्वर ने उन्हें अच्छे रूप में सृजा था। परन्तु अवैवाहिक जोड़े लैंगिक संबंधों का दुरूपयोग करते हैं, इसलिए उनकी परिस्थितियों में ऐसे संबंध बुरे होते हैं।

अंत में, कुछ धर्मविज्ञानी ऐसे विषयों को शामिल करने के लिए आदियाफोरा श्रेणी का प्रयोग करते हैं जहां हम यह निर्धारित नहीं कर पाते कि कौनसे विकल्प अच्छे हैं और कौनसे बुरे। परन्तु क्योंकि हम जानते हैं कि पवित्रशास्त्र जीवन के हर पहलू को स्पर्श करता है, चाहे अप्रत्यक्ष रूप में ही, इसलिए हमें उन विषयों के साथ व्यवहार नहीं करना चाहिए जिनके बारे में हम उदासीन होने के रूप में अनिश्चित हैं। यह सत्य है कि हम प्रायः ऐसा महसूस करते हैं जैसे कि हम नहीं जान सकते कि कौनसे विकल्प, विचार, कार्य या स्वभाव अच्छे हैं और कौनसे बुरे। परन्तु ऐसी परिस्थितियां इसलिए घटित नहीं होतीं कि परमेश्वर का वचन अपर्याप्त है, और न ही कि बाइबल एक उदासीन रवैया अपनाती है, परन्तु इसलिए कि हम इस बात को पहचानने या समझने में असफल हो जाते हैं कि उस सत्य को कैसे लागू करें जो बाइबल ने हमारे सामने रखा है।

नैतिक निर्णय लेने की यह असफलता कई रूप ले सकती है। जैसा कि आप याद करेंगे, नैतिक निर्णय लेने के बाइबलीय नमूने को इस प्रकार से सारगर्भित किया जा सकता है:

> **नैतिक निर्णय लेने में एक व्यक्ति किसी विशेष परिस्थिति के प्रति परमेश्वर के वचन को लागू करता है।**

हमें हमारे नैतिक स्तर, हमारे लक्ष्यों, और हमारे उद्देश्यों पर एक सही समझ के साथ कार्य करना चाहिए, इसे दूसरे रूप में कहें तो, निर्देशात्मक, परिस्थिति-संबंधी और अस्तित्व-संबंधी विषयों में। एक सही नैतिक निर्णय लेने की असफलता का कारण इन दृष्टिकोणों में से किसी एक को समझ पाने की असफलता हो सकता है। हम पवित्रशास्त्र के उन अनुच्छेदों को जिन्हें हम देख रहे हैं उन्हें नजरअंदाज करने या गलत समझने के कारण भी असफल हो सकते हैं। हम नैतिक प्रश्न के साथ जुड़ी हुई परिस्थिति को नजरअंदाज करने या उसे गलत रूप में समझने के कारण भी असफल हो सकते हैं। और हम किसी विषय के अस्तित्व-संबंधी और व्यक्तिगत पहलुओं को नजरअंदाज करने या उनका गलत आकलन करने के कारण भी असफल हो सकते हैं।

सारे विषयों में, जब हम नैतिक निर्णय लेने पर किसी स्थिर निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते, तो यह कहना भी सही नहीं है कि परमेश्वर ने ऐसे निर्णय लेने के लिए पर्याप्त जानकारी नहीं दी है। और यह कहना भी सही नहीं है कि यह विषय उदासीन है, या कि चलने के लिए कोई सही रास्ता नहीं है। बल्कि, हमें पढ़ना, अध्ययन करना, प्रार्थना करना और उस विषय को जांचते रहना जरूरी है, एवं अस्थाई निर्णय लेने में हमारा सर्वोत्तम करना है, परन्तु उस समय तब अंतिम निर्णय को रोके रखना है जब तक निर्देशात्मक, परिस्थिति-संबंधी और अस्तित्व-संबंधी विषय स्पष्ट न हो जाएं।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

निष्कर्ष

इस अध्याय में हमने पवित्रशास्त्र की कई महत्वपूर्ण विशेषताओं को देखा है। हमने देखा है कि क्योंकि पवित्रशास्त्र परमेश्वर से प्रेरणा-प्राप्त है, इसलिए यह सामर्थी और आधिकारिक है। हमने यह भी देखा है कि क्योंकि पवित्रशास्त्र मनुष्यों के लिए लिखा गया है, इसलिए यह स्पष्ट, आवश्यक और पर्याप्त है।

जब हम मसीही नैतिक शिक्षा का अध्ययन करते हैं तो पवित्रशास्त्र की विशेषताओं को ध्यान में रखना हमारे लिए कई रूपों में सहायक है। एक बात यह है कि यह हमें याद दिलाता है कि बाइबल नैतिक प्रश्नों का उत्तर देने में अनिवार्य है। हमें सदैव इसके उत्तरों को खोजना चाहिए क्योंकि यह जीवन के सब पहलुओं में आधिकारिक है, और क्योंकि ऐसे कई प्रश्न हैं जिनका उत्तर केवल बाइबल दे सकती है। एक और बात यह है कि पवित्रशास्त्र की विशेषताओं को याद रखना बहुत उत्साहवर्द्धक है क्योंकि यह हमें याद दिलाता है कि परमेश्वर ने अपने बारे में और अपने स्तरों को सिखाने के लिए पवित्रशास्त्र प्रदान किया है ताकि हम इससे लाभ प्राप्त कर सकें। और अंत में, पवित्रशास्त्र की विशेषताएं हमें हमारे नैतिक निष्कर्षों में आत्म-विश्वास प्रदान करती हैं क्योंकि हम इस बात से आश्वस्त हैं कि बाइबल की नैतिक शिक्षाएं पर्याप्त और स्पष्ट दोनों हैं। अतः, यह महत्वपूर्ण है कि जब हम मसीही नैतिक शिक्षा के हमारे अध्ययन में आगे बढ़ते हैं तो पवित्रशास्त्र की सारी विशेषताओं को याद रखें और उन पर निर्भर रहें।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।